मई 2021

दादावाणी

Retail Price ₹ 15

आत्मा दर्पण जैसा है।
दर्पण की तरह उसका भी
स्वभाव ऐसा है कि
उसमें पूरा
ब्रह्मांड दिखाई देता है,
झलकता है भीतर।

दादा भगवान के सोनेरी सूत्रों

अक्ल तो
उसे कहते हैं कि
जो मतभेद टाले।

खुद की बात
का रक्षण करना,
वही सब से बड़ी
हिंसा है।

वास्तविक प्रेम तो
उसे कहते हैं कि
जो किसी भी संयोग में
टूटे नहीं।

इस 'वर्ल्ड' में कोई
आपका ऊपरी है ही नहीं।
'आपकी भूलें' ही
आपकी ऊपरी हैं!

जो किसी को
दुःख नहीं देता,
भगवान भी उसका
नाम नहीं ले सकते।

व्यापार में
धर्म होना चाहिए,
धर्म में व्यापार
नहीं होना चाहिए।

चिंता यानी खुद
अपने आपको जलाना

भूल रहित होना हो तो
सामने वाले से माफी माँग
लेनी चाहिए और यदि भूल
बढ़ानी हो तो सामने वाले से
माफी मँगवानी चाहिए।

यह जगत् तो
प्रतिस्पंदन है,
अतः आप जो भी दोगे
वही वापस मिलेगा।

सिर्फ विषय से ही बैर
खड़े होते हैं और बैर से ही
संसार चलता रहता है ।
सारे बैर आसक्ति में से
उत्पन्न होते हैं ।

'ज्ञानी पुरुष'
इस संसार जाल में से
छूटने का रास्ता दिखाते हैं,
और हमें लगता है कि
हम इस परेशानी में से छूट गए !

इस जगत् के
सर्व दुःखों का मूल
कारण है,
खुद के स्वरूप की
अज्ञानता।

वर्ष : 16 अंक : 7
अखंड क्रमांक : 187
मई 2021
पृष्ठ - 28

Editor : Dimple Mehta
© 2021
Dada Bhagwan Foundation
All Rights Reserved.
Printed & Published by
Dimple Mehta on behalf of
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Owned by
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Printed at
Amba Offset
B-99, GIDC, Sector-25,
Gandhinagar – 382025.

Published at
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

संपर्क सूत्र :
त्रिमंदिर, सीमंधर सिटी,
अहमदाबाद-कलोल हाइ-वे,
पो.ओ.: **अडालज**,
जि.: गांधीनगर-382421.
फोन : 9328661166-77
email: dadavani@dadabhagwan.org
www.dadabhagwan.org
दादावाणी संबंधी शिकायत के लिए:
+91 8155007500

सबस्क्रिप्शन (सदस्यता शुल्क)
5 साल
भारत : 650 रुपये
यू.एस.ए. : 60 डॉलर
यू.के. : 45 पाउन्ड
वार्षिक
भारत : 150 रुपये
यू.एस.ए. : 15 डॉलर
यू.के. : 10 पाउन्ड
भारत में D.D./M.O.
'महाविदेह फाउन्डेशन' के नाम से
संपर्कसूत्र के पते पर भेजें।

दादावाणी

उदाहरण दर्पण का, समझें स्वरूप आत्मा का

संपादकीय

ज्ञानी पुरुष 'दादा भगवान' द्वारा दिए गए अक्रम विज्ञान के भेदज्ञान से हम में मूल आत्मा की प्रतीति बैठ जाती है। अब पाँच आज्ञा का पालन करने से जागृति बढ़ती है और जागृति से पाँच आज्ञा का पालन कर सकते हैं। परंतु शुद्ध उपयोग में आने के लिए आत्मा के गुणों, स्वभाव और स्वरूप का आराधन होना आवश्यक है। दादाश्री ने स्व पुरुषार्थ द्वारा आत्मा के गुणों, स्वभाव और स्वरूप को स्पष्ट रूप से समझा, संपूर्ण-सर्वांग (रूप से) अनुभव किया और खुद उसी रूप बन गए। प्रत्येक गुणधर्मों सहित आत्मा उनके अनुभव में बरता। इसीलिए उन्होंने आत्मा के गुणधर्मों को, स्वभाव को, स्वरूप को जैसा है वैसा, उदाहरण सहित वाणी द्वारा समझाया और महात्माओं को भी वैसा ही दिखने लग जाए, ऐसी समझ दी।

प्रस्तुत अंक में, आत्मा के फिज़िकल (स्थूल) स्वरूप का वर्णन करने के लिए दर्पण की सिमिलि द्वारा आत्मा के स्वरूप का वर्णन किया है। आत्मा दर्पण जैसा है। जिस प्रकार दर्पण में बाहर की सभी चीज़ें झलकती है उसी प्रकार आत्मा के भीतर ही पूरा ब्रह्मांड झलकता है। उसे खुद को बाहर देखने नहीं जाना पड़ता। अंतर सिर्फ इतना है कि दर्पण जड़ है और आत्मा चेतन है।

दर्पण की इच्छा के बगैर दर्पण में सबकुछ दिखाई देता है। यदि दर्पण जीवित होता तो कहता कि, 'आप सभी बाहर खड़े हो, परंतु मुझे मेरे भीतर दिखाई देते हो।' लेकिन दर्पण में चेतन नहीं है और आत्मा में चेतन हैं इसलिए यह (व्यवहार आत्मा) कहता है कि, 'मुझे यह दिखाई देता है।' वास्तव में आत्मा में बाहर देखने की शक्ति नहीं है। यह तो, खुद के स्वभाव के कारण सभी चीज़ें प्रकाशमान होती है। उसे ही खुद देखता है। भ्रांति से खुद कर्ता और भोक्ता बन बैठा है, विभाव की वजह से। आत्मा खुद प्रकाशक है, उसमें जगत् का प्रतिबिंब पड़ता है इसलिए खुद को घबराहट होती है कि यह सब क्या है? किसने किया यह? फिर, 'मैंने किया', ऐसी भ्रांति उत्पन्न हो जाती है। जगत् खुद के अंदर प्रकाशित होता है, वह *उपाधि* (परेशानी) है, उसमें 'मैं यह हूँ, मैंने यह किया', ऐसा मानने से संसार कायम है।

ऐसे काल में, आत्मा के स्वरूप का वाणी द्वारा शब्दों में वर्णन करने वाले, ऐसे ज्ञानी पुरुष को धन्य हैं! और अपने जैसे कलियुगी जीवों के पुण्य को भी धन्य हैं कि वह गुह्यतम तत्त्व की बात हमें, ज्ञानी से सुनने को मिली, पढ़ने को मिली, उनके सत्संग के रूप में समझने को मिली। अक्रम अर्थात् कारण मोक्ष हो गया, अब जितने कर्म बाकी बचे हैं उनका यदि ज्ञाता-द्रष्टा पूर्वक निबेड़ा लाए तो आत्यांतिक मोक्ष हो जाएगा। जैसे दर्पण में सबकुछ झलकता रहता है, उसी तरह सिद्धक्षेत्र में, मोक्ष में गए हुए आत्माओं में सभी ज्ञेय झलकते हैं। अब, महात्माओं का एक मात्र ध्येय यही है कि मूल आत्मा के स्वरूप का जैसा है वैसा अनुभव करना। इस ध्येय की पूर्णता के लिए कि आत्मा के ज्ञाता-द्रष्टा गुण का दर्पण की सिमिलि द्वारा अभ्यास करके, खुद के स्व-सुख का अनुभव करें, यही हृदय से अभ्यर्थना।

- जय सच्चिदानंद

उदाहरण दर्पण का, समझें स्वरूप आत्मा का

'दादावाणी' सामायिक में मुद्रित पाठ्य सामग्री मूलत: गुजराती 'दादावाणी' का हिन्दी रूपांतर है। कोष्ठक में दिए गए शब्द या तो अंग्रेज़ी शब्द का अर्थ हैं अथवा शब्द का तात्पर्य स्पष्ट करने हेतु वृद्धित किए गए वाक्यांश है। यहाँ पर 'आत्मा' शब्द को गुजराती और संस्कृत की तरह पुल्लिंग में प्रयोग किया गया है। जहाँ पर भी 'चंदूभाई' नाम का प्रयोग हुआ है, वहाँ पर पाठक खुद को समझें। 'दादावाणी' के इस अंक में अगर आप कोई बात न समझ पाएँ तो प्रत्यक्ष सत्संग में पधारकर समाधान प्राप्त करें। अनुवाद में कोई कमी नज़र आए तो हमें सूचित करने की कृपा करें, ताकि भविष्य में सुधार किया जा सकें। ऐसी क्षतियों के लिए हम आपके क्षमाप्रार्थी है।

विनाशी जग के साथ आत्मसंबंध

प्रश्नकर्ता : आत्मा के बारे में समझने के बाद, इस जगत् की विनाशी चीज़ों के साथ आत्मा का क्या संबंध है?

दादाश्री : सिनेमा देखने गए हो आप कभी? तो अपना सिनेमा के साथ क्या संबंध है? वह जो होता है, वहाँ पर कपड़े का बड़ा पर्दा होता है, उस पर्दे के साथ अपना कोई संबंध है? क्या संबंध है अपना?

प्रश्नकर्ता : सिर्फ देखने का।

दादाश्री : बस तो फिर, उसी तरह यह सब भी सिर्फ देखना ही है। और कोई संबंध नहीं है। नहीं देखेंगे तो आत्मा गायब हो जाएगा। इसलिए देखना ही पड़ेगा। ज्ञेय नहीं होंगे तो ज्ञाता नहीं रहेगा। ज्ञेय की उपस्थिति ही ज्ञाता की उपस्थिति सूचित करती है।

सिनेमा चले, तभी तक देखने वाले की कीमत है, वर्ना अगर सिनेमा बंद हो तो देखने वाले की कीमत नहीं है।

ज्ञेय-ज्ञाता का संबंध

(आत्मा का) निरंतर ज्ञाता-द्रष्टा स्वभाव का ही है। जो आत्मा दिया था न, शुद्धात्मा, उसका स्वभाव ही ज्ञायक है। ज्ञेय हाज़िर हुआ कि यह ज्ञायक खुद अपनी जागृति दिखाता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, तो इसे व्यवहार में किस तरह उतारें?

दादाश्री : व्यवहार में ही है यह। यह व्यवहार ज्ञेय है और निश्चय ज्ञायक है। दोनों का संबंध यही है। व्यवहार-निश्चय का ही संबंध है। व्यवहार में ज्ञेय के अलावा कोई भी चीज़ नहीं है। व्यवहार में कोई ज्ञाता नहीं है और निश्चय में ज्ञाता के अलावा अन्य कोई चीज़ नहीं है।

प्रश्नकर्ता : वह तो ठीक से समझ में आ गया। तो व्यवहार में जब पाँच-छ: कार्य इकट्ठे हो जाते हैं तो ज्ञाता-द्रष्टा का भाव चला जाता है उसके बाद कुछ समय में वापस आ जाता है।

दादाश्री : नहीं, चला नहीं जाता। वह तो ऐसा आभास होता है। वह चला नहीं जाता।

प्रश्नकर्ता : दूसरी विभाव दशा में तन्मयाकार हो जाते हैं?

दादाश्री : चला नहीं जाता। ऐसा है न कि यहाँ पर लाइट हो लेकिन अगर हम सो जाएँ तो हमें अंदर अंधेरा दिखता है। ज़रा डोज़िंग हो जाए, इसका मतलब लाइट कहीं चली नहीं गई है। लाइट तो उतनी ही प्रकाशमान है। अर्थात् यह जो व्यवहार है, वह पूरा ज्ञेय स्वरूप से है और निश्चय ज्ञायक स्वरूप से है। अब दोनों के बीच संबंध स्थापित हो गया। ज्ञेय-ज्ञाता का संबंध हो गया यह।

अर्थात् ज्ञाता-द्रष्टा का सब से बड़ा अर्थ वह है। अंदर खुद क्या कर रहा है, मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार, ये सब क्या कर रहे हैं, उन सब को सर्वस्व प्रकार से जाने और देखे, बस। और कुछ नहीं।

आप आत्मा ही हो और ज्ञाता-द्रष्टा हो। यह हो या वह हो, आपका ज्ञाता-द्रष्टापन यदि ज़रा सा भी छोड़ा तो अंदर परेशानी होगी। आप जो हो, वह हो! यह तो जो ज्ञान दिया है, 'हम शुद्धात्मा हैं' वह ज्ञान तो वैसे का वैसा ही रहना चाहिए।

आत्मा को नहीं है ज़रूरत किसी की

प्रश्नकर्ता : जब हम कहते हैं कि शुद्धात्मा सिर्फ ज्ञाता-द्रष्टा है, तब, 'द्रष्टा है' वह बात समझ में आती है लेकिन जब ऐसा कहते हैं कि 'आत्मा ज्ञाता है' तब आत्मा कौन से माध्यम द्वारा ज्ञान प्राप्त करता है? आत्मा प्रकृति के माध्यम का उपयोग तो नहीं करता होगा न?

दादाश्री : किसी का उपयोग तो नहीं करता लेकिन किसी से हेल्प भी नहीं माँगता। आत्मा स्वतंत्र है। आत्मा परमात्मा है। उसकी खुद की अनंत शक्तियाँ हैं। आत्मा को किसी और से ज्ञान नहीं लेना पड़ता। जिसकी बॉडी ही ज्ञान है, वह खुद ही ज्ञान स्वरूप है, विज्ञान स्वरूप है, फिर उसे किसी के मारफत ज्ञान लेने का रहा ही कहाँ?

प्रश्नकर्ता : हम जब प्रकृति को द्रष्टा के रूप में देख रहे होते हैं, वह ठीक है लेकिन जब हम उसके ज्ञाता रहें तो उस समय प्रकृति का कोई भी माध्यम, कोई भी विचार हो या अन्य कोई भी उसके गुण, उसके माध्यम से ही हम में जानपना आता है। वर्ना, हम में जानपना कैसे आ सकता है?

दादाश्री : नहीं। खुद स्वभाव से ही जानपने वाला है। यह जो जानपना प्रकृति लाती है न, प्रकृति में आता है न, वह आत्मा में से आरोपित किया हुआ है। वह तो खुद के जानपने में से आरोपण करके प्रकृति में आए, तब वह प्रकृति का जानपना है। यह बुद्धि खुद का ही आरोपण है, और कुछ भी नहीं है। अत: आत्मा के अलावा अन्य कहीं भी जानपना है ही नहीं। यहीं पर सारा जानपना उत्पन्न हुआ है। ये जो ज्ञाता-द्रष्टा, दो गुण हैं, वे आत्मा के ही गुण हैं। इसके अलावा अन्य कहीं भी ज्ञाता-द्रष्टा नहीं है और प्रकृति जो जानती है, वह आत्मा के आरोपण से जानती है। और कुछ भी नहीं है। प्रकृति में जानपना है ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : इसका मतलब क्या हुआ? आरोपण नहीं करना है?

दादाश्री : 'नहीं करना है', वह भाषा ही गलत है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर अब यह ज्ञाता-द्रष्टा किस प्रकार से रहना है? प्रकृति के किसी भी माध्यम या कोई भी सहारा लिए बगैर डायरेक्ट ज्ञाता-द्रष्टा किस प्रकार से रहें?

दादाश्री : उसका स्वभाव ही ज्ञाता-द्रष्टा है। वह आपको समझता है। ज्ञाता-द्रष्टा को आप अपनी भाषा में समझे हो।

प्रश्नकर्ता : दादा, हम जो कहते हैं कि आत्मा ज्ञाता-द्रष्टा है तो वह ठीक है। अब आत्मा यदि ज्ञाता-द्रष्टा है तो क्या वह सूक्ष्म शरीर की मदद से ज्ञाता-द्रष्टा रहता होगा?

दादाश्री : नहीं। यह जो दर्पण होता है न, वह खुद रखा हो और हम उसके सामने जाएँ तो दर्पण में हम दिखाई देंगे या नहीं दिखाई देंगे? उसमें क्या दर्पण को कुछ करना पड़ता है? उसी प्रकार आत्मा में झलकता है यह सब। यह जो दर्पण है, वह अचेतन है और आत्मा चेतन है। चेतन में सब झलकता है। इसलिए खुद को पता चलता है कि अंदर यह क्या हुआ, कौन-कौन दिख रहा है। ऐसा ज्ञाता-द्रष्टा है। अंतिम ज्ञाता-द्रष्टा इस प्रकार से है।

जानने जैसे हैं सभी ज्ञेय

आत्मा के अलग हो जाने के बाद, वह ज्ञाता कहा जाता है और ये जो सारी विनाशी चीज़ें दिखाई देती हैं, वे ज्ञेय हैं। बाहर विनाशी भी दिखाई देता है और अंदर अविनाशी भी दिखाई देता है। उसे सबकुछ दिखाई देता है। अंदर भी बहुत सारे ज्ञेय हैं, परंतु बाहर के लोगों को तो इन्द्रियज्ञान तक का ही समझ में आता है। मन का, आँख का और बुद्धि का, बस उतना ही समझ में आता है। उससे आगे का भाग समझ में नहीं आता।

प्रश्नकर्ता : ज्ञेय का अर्थ क्या समझना है।

दादाश्री : ज्ञेय अर्थात् जानने की चीज़ें। जानने की जो चीज़ें है, वे सभी ज्ञेय कहलाती हैं और देखने की चीज़ें, वे दृश्य कहलाती हैं। आत्मा का स्वभाव क्या है? जानना और देखना। लेकिन वह क्या जानता है? तब कहते हैं, ज्ञेयों को जानता है। कभी भी जब ज्ञेय होते हैं तब आ ही जाता है, उसके जानने में। जैसे कि यदि कोई व्यक्ति दर्पण के सामने जाए तो भीतर (प्रतिबिंब) झलक जाता है, उसी प्रकार इसमें (आत्मा में) आ जाता है।

यह दर्पण यदि जीवित होता न, तो सबकुछ ज्ञेय के रूप में दिखाई देता इसमें।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह सभी को देखता है, ज्ञेय के रूप में।

दादाश्री : उसी तरह यह आत्मा खुद ज्ञेय के रूप में देखता है। सिर्फ इतना ही है कि यह जीवित नहीं है और आत्मा जीवित है इतना ही फर्क है।

प्रश्नकर्ता : यह चेतन है और वह जड़ है, इतना ही।

दादाश्री : जैसे दर्पण के संयोग उसमें झलकते हैं उसी प्रकार वे संयोग अंदर झलकते हैं बाहर नहीं दिखाई देते।

प्रश्नकर्ता : हाँ, दर्पण में दर्शन तो है लेकिन ज्ञान नहीं है। उसका एक गुणधर्म यह है कि उसमें दर्शन है न!

दादाश्री : दर्शन अर्थात्?

प्रश्नकर्ता : वह खुद नहीं कर सकता।

दादाश्री : नहीं, दर्शन अर्थात् प्रतीति। उसमें प्रतीति नहीं होती। जीवित नहीं है न! जीवित नहीं हो तो उसमें दर्शन नहीं होता, प्रतीति नहीं होती। लेकिन यह तो एक उदाहरण है। और देखो! सभी दिखाई देते हैं न, हम सभी! है उसे कुछ लेना-देना? जितने उसके सामने खड़े रहेंगे, वे सभी दिखाई देंगे।

प्रश्नकर्ता : वह वीतराग ही है।

दादाश्री : वीतराग ही है, उसी प्रकार आत्मा संयोगों को देखता रहता है, जानता रहता है।

दर्पण की तरह झलकती हैं चीज़ें आत्मा में

प्रश्नकर्ता : वह जो दर्पण के बारे में बताया है न, कि दर्पण तो आत्मा को समझने का एक सब से बड़ा साधन है, वह ज़रा समझाइए।

दादाश्री : यह दर्पण तो बहुत बड़ा 'साइन्स' (विज्ञान) है। आत्मा का 'फिज़िकल' (स्थूल) वर्णन करना हो तो दर्पण ही एक साधन है! अर्थात् आत्मा दर्पण जैसा है। दर्पण की तरह उसका स्वभाव ही ऐसा है कि उसमें भीतर पूरा ब्रह्मांड दिखाई देता है, झलकता है भीतर। यह सब बाहर जो है न, वह सब भीतर झलकता है। इसलिए उसे यों तुरंत ही पता चल जाता है कि यह क्या हुआ! यानी कि पूरा जगत् क्या कर रहा है, उसे वह (भीतर) देखता रहता है और जानता रहता है।

यानी कि वह यों दर्पण की तरह भीतर, खुद के अंदर झलकता है। खुद को बाहर देखने नहीं जाना पड़ता। वे उसकी जो आँखें-वाँखें हैं न, वह तो उसका पूरा शरीर (द्रव्य) ही ऐसा है कि वह उसके भीतर ही झलकता है अंदर। अत: हम जो कुछ भी करते हैं तो वह उसमें, आत्मा में, खुद में ही झलकता है अंदर।

बाहर देखने नहीं जाना पड़ता। यदि देखने जाना पड़े तब तो यों ऊँचा होना पड़ेगा फिर। अमरीका को देखने के लिए यों ऊँचा होना पड़ता है लेकिन सबकुछ भीतर ही झलकता है, खुद में। दर्पण में झलकता है या नहीं, ये सभी लोग बैठे हुए हों, वह?

प्रश्नकर्ता : हाँ, झलकते हैं।

दादाश्री : उसी प्रकार आत्मा दर्पण जैसा है, लेकिन दर्पण जड़ है और आत्मा चेतन है।

दर्पण की तरह भीतर झलकते हैं ज्ञेय

प्रश्नकर्ता : यह सर्वस्व अमारुं अर्पण छे, इसमें आता है कि 'जीवन भले एक दर्शन हो, पण आतम शाश्वत दर्पण छे।' तो दर्पण द्वारा क्या कहना चाहते हैं?

दादाश्री : हाँ, दर्पण अर्थात् उसमें पूरा जगत् दिखाई देता है, भीतर झलकता है सबकुछ। अत: फिर उसे देखने की मेहनत नहीं करनी पड़ती। जैसे कि दर्पण को मेहनत करनी पड़ती है कुछ देखने की? उसी तरह भीतर झलकता है, अर्थात्: दर्पण है एक प्रकार का। यह तो, फिर किसी स्टेज पर उसका अर्थ ऊँचाई पर पहुँच जाता है। लेकिन अंत में दर्पण (जैसी स्थिति) में रहता है।

दर्पण की इच्छा के बिना दर्पण में सबकुछ दिखाई देता है। उसकी इच्छा है कुछ? यह दर्पण यदि जीवित होता न, तो सभी से कहता रहता कि, 'देखो मुझे, मेरे भीतर सबकुछ कैसा दिखाई देता है! आप सभी बाहर खड़े हो लेकिन मुझे मेरे भीतर दिखाई देते हो।'

लेकिन दर्पण में चेतन नहीं है इसलिए वह कहता नहीं है कि, 'मुझे ऐसा दिखाई देता है' और यह चेतन है इसलिए कहता है कि मुझे ऐसा दिखाई देता है। अत: लोगों के मन में क्या होता है, कि, 'यों बाहर देखता होगा लेकिन बाहर नहीं दिखाई देता, उसके अंदर ही (प्रतिबिंब) झलकता है।'

दर्पण यदि चेतन होता तो खुद के अंदर ही दिखाई देता, उसे कहाँ फिर बाहर देखने जाने का रहा? चेतन के अंदर झलकता है यह सब। पूरा जगत् चेतन के अंदर दिखाई देता है। अत: उसे वहाँ देखना है, उसे कहीं बाहर देखने नहीं जाना है।

झलकता है भीतर अतीन्द्रिय ज्ञान में

प्रश्नकर्ता : मेरा आत्मा तो इस शरीर में है, तो वह, यह सब जो जानता है तो क्या मेरा आत्मा सभी जगह घूमता है? जैसे कि सिद्धक्षेत्र में पूरे ब्रह्मांड का जानता है, तो क्या मेरा आत्मा सभी जगह घूमता है?

दादाश्री : नहीं! घूमता नहीं है, भीतर झलकता है। घूमने की ज़रूरत नहीं है, अंदर झलकता है।

प्रश्नकर्ता : जो झलकता है, वह मेरे आत्मा का अतीन्द्रिय ज्ञान झलकता है?

दादाश्री : हाँ, जैसे कि यह दर्पण अपनी जगह पर खड़ा रहता है और जितने भी लोग आते हैं न, वे सभी उसमें झलकते हैं।

प्रश्नकर्ता : झलकते हैं, तो क्या मेरे अतीन्द्रिय ज्ञान में झलक है?

दादाश्री : हाँ, ज्ञान में ही है।

प्रश्नकर्ता : अब, जहाँ ज्ञान है वहाँ आत्मा होगा ही।

दादाश्री : जहाँ ज्ञान है वहाँ आत्मा होता ही है और जहाँ ज्ञान नहीं है वहाँ आत्मा नहीं है। इन जड़ चीज़ों में आत्मा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : ठीक है। हम जितने भी ज्ञेय देखते हैं, यानी कि ज्ञान से ज्ञेय दिखाई देते हैं, तो जब हम दूर-दूर के ज्ञेय देखते हैं तब मेरा आत्मा वहाँ नहीं जाता लेकिन उसी में झलकता है।

दादाश्री : कहीं भी जाने की ज़रूरत नहीं है। वे जो वहाँ पर सिद्धक्षेत्र में बैठे हैं न, तो मैंने यों हाथ ऊँचा किया न, वह उन्हें वहाँ अंदर, उनके ज्ञान में सबकुछ झलकता है। झलकता है अंदर, उन्हें देखने नहीं जाना पड़ता, उपयोग नहीं रखना पड़ता। यदि उपयोग देने जाएँ तो मेहनत होगी। उपयोग तो हमें देना है। क्योंकि दुरुपयोग किया है। दुरुपयोग किया है इसलिए शुद्ध उपयोग में आना पड़ता है। लेकिन उनके लिए शुद्ध उपयोग जैसा कुछ रहा ही नहीं न!

केवलज्ञान तक ज्ञाता-द्रष्टा, फिर दर्पण

अर्थात् आत्मा में बाहर देखने की शक्ति नहीं है। यह तो, हम ज्ञाता-द्रष्टा यानी कि इस दृष्टि से कहते ज़रूर हैं लेकिन खुद के अंदर जो झलकता है, उसी को देखता है।

प्रश्नकर्ता : तो आप जो ज्ञाता-द्रष्टा कहते हैं, उसमें बाहर देखना और जानना नहीं है क्या?

दादाश्री : नहीं। ज्ञाता-द्रष्टा है अर्थात् वह यों इन आँखों की तरह नहीं देखता। उसमें यों भीतर झलकता है। ज्ञाता-द्रष्टा में क्या कोई क्रिया करनी पड़ती है? झलकता है। ज्ञाता-द्रष्टा, वह पहली स्टेज है और अंतिम स्टेज है, यह (झलकना)। (अंतिम) देह छूट जाने के बाद वह दर्पण बन जाता है। जब तक देह है तब तक ज्ञाता-द्रष्टा है।

प्रश्नकर्ता : और अधिक समझाइए।

दादाश्री : ऐसा है न, ये जो देखने के कार्यों में पड़े हैं, तो वह देखने का कार्य सहज होना चाहिए। देखना तो करना पड़ता है, ज्ञाता-द्रष्टा रहना पड़ता है, अत: उसे भी जानने वाला है (उससे) ऊपर। वह फिर मैनेजर बना। फिर उसका भी *ऊपरी* (वरिष्ठ मालिक) रहता है। अंतिम *ऊपरी* को देखना नहीं पड़ता, सहज ही दिखाई देता है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् यह जो ज्ञाता-द्रष्टा है और जिसे देखना पड़ता है, वह कौन है और उसे भी जो देखता है, वह कौन है?

दादाश्री : मूल (आत्मा) है। वह इसे भी देखता है। वह मूल (मुख्य) है। यह जो देखना पड़ता है, वह बीच वाला उपयोग है। और उसे भी जानने वाला बिल्कुल अंतिम दशा में है।

प्रश्नकर्ता : वह 'बीच वाला' कौन है, दादा?

दादाश्री : उपयोग।

प्रश्नकर्ता : वह उपयोग है लेकिन किसका उपयोग है?

दादाश्री : वह उस 'प्रज्ञा' का। प्रज्ञा के उपयोग में आ गया तो बहुत हो गया। इससे आगे की हम में से किसी को भी ज़रूरत नहीं रही, अपना कॉलेज वहीं तक है!

प्रश्नकर्ता : अर्थात् केवलज्ञान द्वारा जो दिखाई देता है, उसकी समानता दर्पण के साथ कर सकते हैं क्या?

दादाश्री : हाँ। केवलज्ञान में अंदर देखता है सबकुछ। अंदर झलकता है सबकुछ खुद के ज्ञान में, जैसे कि दर्पण में झलकता है न सबकुछ। ये जितने भी लोग बैठे हों, वे सभी उसमें झलकते हैं। ये सभी जो बाहर बैठे हुए हैं न, वे। लेकिन

दर्पण बाहर नहीं देखता। उसमें खुद में जो झलकता है उसी को देखता है।

केवलज्ञान में झलकता है सबकुछ

केवलज्ञान में सबकुछ दिखाई दे, ऐसा है। केवलज्ञान, एक ऐसा ज्ञान है कि जिसमें देखने का कुछ बाकी नहीं रहता। जितने ज्ञेय हैं, वे सभी दिखाई देते हैं। दृश्य भी सारे दिखाई देते हैं। अत: आपने यों देखा हो, वह गप्प हो सकता है, लेकिन इसमें गप्प नहीं है।

प्रश्नकर्ता : क्या वह प्रयत्न से होता है? वह जो केवलज्ञान से दिखाई देता है। दिखाई देता है, वह तो शब्द है, लेकिन वह किस प्रकार होता होगा, दादा?

दादाश्री : वह तो सपोज़ (मान लो कि) यह जो दर्पण है, वह दर्पण यदि चेतन होता तब तो वह मुझसे कहता कि, 'मैं सभी चीज़ें देखता हूँ।' तब कोई पूछे, कि 'क्या देखता है तू, यहाँ (बाहर)?' तब वह कहता, 'नहीं, मेरे अंदर।' उसी प्रकार केवलज्ञान में अंदर देखता है सबकुछ।

यह बाहर जितना सत्य है न, उससे भी विशेष यह सत्य है। ये सभी बातें, विशेष रूप से सत्य हैं। ज़रा भी भूल बिना का।

लोग अमरीका नहीं गए और हम भी अमरीका नहीं गए हो, फिर भी मानना तो पड़ेगा ही न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : उसके जैसा है यह सब।

प्रश्नकर्ता : नहीं-नहीं। मैं मानता हूँ। मैं संपूर्ण रूप से मानता हूँ, दादा।

दादाश्री : वह ठीक है। वह जो मानते हो, वह सबकुछ ठीक है। लेकिन यह केवलज्ञान में देखा हुआ है। आप जो जानना चाहते हो कि यह कैसे देखा होगा, वह केवलज्ञान में देखा है। वह मुझे नहीं दिखाई देता। हमारे पास एक ही चीज़ है कि हमारे अंदर से, यहाँ से एक शरीर निकलता है, हमारे 'कंधे से।' जब हमें कुछ भी जानना हो... उलझ जाएँ तब, वह शरीर निकलता है और वहाँ (सीमंधर स्वामी के पास) जाकर पूछकर फिर वापस आ जाता है प्रकाश लेकर, कि यह क्या है? खुलासा लेकर।

प्रश्नकर्ता : उस समय इस शरीर का क्या होता है?

दादाश्री : नही! यह शरीर तो यों ही रहता है। यहाँ से (कंधे से) निकलता है दूसरा, प्रकाशरूपी शरीर, बिल्कुल छोटा सा। वह वहाँ जाकर फिर वापस आता है खुलासा लेकर, जब भी हम उलझ जाते हैं है, तब। और विदिन मिनट में वापस। वह ज़्यादा टाइम भी नहीं लगाता। क्योंकि अन्य कोई तार-वार जॉइन्ट है ही नहीं। अब, इतना ही जॉइन्ट है यहाँ से।

सिद्धक्षेत्र में ज्ञेय झलकते हैं स्वभाव से

प्रश्नकर्ता : आत्मा का मुख्य गुण ज्ञाता-द्रष्टा है और स्व-पर प्रकाशक है, तो सिद्धक्षेत्र में लोक के, ज्ञेय को कैसे देखते हैं?

दादाश्री : सिद्धक्षेत्र में जाने के बाद आत्मा में ज्ञेय, दर्पण की तरह दिखाई देते हैं। आत्मा को आत्मा में, खुद में ही वे ज्ञेय झलकते हैं।

आत्मा खुद स्व-पर प्रकाशक है, खुद को भी प्रकाशित करता है और दूसरों को भी प्रकाशित करता है। अत: यह जो जगत् है न, वह उसमें, खुद के अंदर ही झलकता है यों।

जैसे कि यहाँ दर्पण रखा हो तो तुम उसमें दिखोगे, लेकिन दर्पण तुम्हें नहीं देखता, उसी प्रकार यह स्व-पर प्रकाशक है। खुद ज्ञाता होने की वजह से, प्रकाश से वह सबकुछ देखता है।

प्रश्नकर्ता : दादा ने कहा है कि, 'हमने पूरा ब्रह्मांड देखा है ज्ञान में', तो इसका अर्थ यही न, कि इसी तरह से आपने देखा है?

दादाश्री : आत्मा यदि अपने स्व-स्वभाव में आ जाए तो सबकुछ दिखाई देता है। जितना स्वभाव में आ जाता है, उतना ही दिखाई देता है।

सिद्धों को सहज ही, स्वभाव से वर्तमान दिखाई देता है

प्रश्नकर्ता : लेकिन दर्पण में तो हमें देखने की क्रिया करनी पड़ती है उसी प्रकार आत्मा यदि ज्ञाता-द्रष्टा रहता है तो वहाँ सिद्धक्षेत्र में भी उसे देखने की क्रिया तो करनी पड़ती होगी न?

दादाश्री : नहीं।

प्रश्नकर्ता : तो उसे पूरा, सबकुछ एक साथ दिखाई देता है?

दादाश्री : सहज स्वभाव से, सबकुछ दिखाई देता है।

प्रश्नकर्ता : एक साथ सबकुछ दिखाई देता है?

दादाश्री : एक साथ ही सबकुछ दिखाई देता है। बढ़ता या घटता हुआ भी दिखाई देता है। रात होती है तो उस तरफ के भाग में कम दिखाई देता है। यहाँ पर शाम के छः बजे तक यहाँ के लोग आते-जाते दिखाई देते हैं। फिर ये (पक्षी) ऊपर उड़ते हैं, फिर जानवर वगैरह सभी, वे सब दिखाई देते हैं। फिर रात होती है तो कम हो जाता है। फिर रात को बारह बजे तो कोई नहीं दिखाई देता। सुबह के तीन-चार बजे तो अंधेरा होता है, तब शुरू होता हुआ दिखाई देता है। फिर बढ़ता, बढ़ता, बढ़ता ही जाता है, वह दिखाई देता है। उससे भी अधिक बढ़े तो वह दिखाई देता है। वापस घटता, घटता जाता है, वह दिखाई देता है।

प्रश्नकर्ता : दादा, वह इस प्रकार से सतत देखते रहते हैं, क्या यह जो देखना है वह?

दादाश्री : दिखाई देता है, देखना नहीं है, दिखाई ही देता है।

प्रश्नकर्ता : ऑटोमैटिकली, स्वभाव से ही दिखाई देता है?

दादाश्री : स्वभाव से ही दिखाई देता है। देखते रहें तो वह ज्ञान है।

प्रश्नकर्ता : तो उनकी एक ही क्रिया निरंतर चलती रहती है, तो क्या उससे उन्हें बोरियत नहीं होती? देखते ही रहते हैं! हमें तो चाहे कितना भी सुंदर हो, उसे पाँच मिनट देखें, तब भी बोरियत हो जाती है। तो क्या वहाँ उन्हें स्वभाव से सिर्फ देखते ही रहना होता है, पुतले की तरह?

दादाश्री : यह जो लाइट है, तो इसे लाइट (प्रकाश) देने में बोरियत होती है क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं, इस प्रकार से तो नहीं होती। लेकिन यह कहाँ जीवित है? इसमें कहाँ आत्मा है? इसमें तो आत्मा नहीं है। यह तो जड़ है, जबकि वह तो आत्मा है। अस्तित्व अलग है उसका।

दादाश्री : लेकिन उन्हें स्वाभाविक रूप से दिखाई देता है न, स्वभाव से ही दिखाई देता है।

प्रश्नकर्ता : जिसका अस्तित्व है, ज्ञाता उसे देखता है कि यह ऐसा है, यह ऐसा है। वह देखता है तो वह...

दादाश्री : चोर चोरी करता हो तो उस पर वे द्वेष नहीं करते और कोई दान देता हो तो उस पर वे राग नहीं करते। कोई किसी को मारता हो, खून कर देता हो उसे भी देखते हैं। ऐसे में कोई राग-द्वेष नहीं, किसी भी स्थिति में।

प्रश्नकर्ता : उन्हें वर्तमान का ही दिखाई देता है, यदि कृष्ण भगवान को देखना हो तो?

दादाश्री : नहीं! सिर्फ वर्तमान का। भूतकाल का नहीं दिखाई देता। वर्तमान के अलावा कुछ नहीं देखते।

प्रश्नकर्ता : जो भी हो रहा है, वह।

दादाश्री : वह जो हो रहा है उतना ही दिखाई देता है। हमें भी सिर्फ वर्तमान का ही दिखाई देता है। अन्य कोई झंझट नहीं और आपसे भी ऐसा ही कहते हैं, कि भाई, आप वर्तमान में रहो।

प्रश्नकर्ता : उपयोग द्वारा उन्हें कुछ पुराना देखना हो तो देख सकते हैं?

दादाश्री : उपयोग द्वारा देखने की शक्ति ही नहीं है। उनकी वह लाइन ही नहीं है। क्या उनकी सास-ससुर को लेकर चिंता है कि झंझट करें?

प्रश्नकर्ता : वे लोग देखते रहते हैं, तो क्या उनके पास दृष्टि है?

दादाश्री : ऐसी दृष्टि नहीं है, इससे तो थकान लगती है।

प्रश्नकर्ता : तो ऐसी कौन सी दृष्टि होती है उनके पास?

दादाश्री : देखना ही नहीं पड़ता उन्हें, दिखता ही रहता है।

जैसे कि यह काँच का गोला हो, उसमें हम यहाँ जितने बैठे हैं, वे सभी दिखाई देते हैं। उसमें काँच के गोले को क्या फर्क पड़ेगा?

प्रश्नकर्ता : कुछ भी नहीं?

दादाश्री : उसी प्रकार उसे कुछ देखना है ही नहीं। देखना अर्थात् भीतर दिखाई देता है। उनके पास उनका अनंत ज्ञान और अनंत दर्शन है और उसके उपयोग होने के परिणाम स्वरूप आनंद होता है। पहले आनंद होता है और फिर यह, इस प्रकार से नहीं होता। उनके ज्ञान और दर्शन का उपयोग होता है। इसलिए आनंद रहता ही है। सहज रूप से आनंद रहता है उन्हें। यानी कि उनके पास ज्ञान व दर्शन के अलावा अन्य कुछ है ही नहीं। वह स्वरूप ही पूरा ज्ञान स्वरूप है, दर्शन स्वरूप है।

खुद, खुद का स्वानुभव सुख भोगते रहते हैं

यानी कि उन्हें कुछ करना ही नहीं होता। अपने ज्ञायक पद में, अपने स्वभाव में ही निरंतर रमणता करते रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : स्वभाव अर्थात् क्या?

दादाश्री : खुद के स्वभाव में अर्थात्, जैसे कि यह लाइट क्या करती है? उजाला देती है न! उसी तरह से यह अचेतन है, जबकि वह (आत्मा) चेतन है।

खुद मोक्ष स्वरूप ही है और स्वाभाविक सुख का मालिक है।

सिद्धगति में सभी सिद्ध स्वतंत्र रूप से ही हैं और खुद के सुख का ही अनुभव करते हैं, निरंतर परमानंद का अनुभव करते हैं।

प्रश्नकर्ता : जो सिद्धगति में हैं, मोक्ष में गए हैं, वे लोग जो देह रहित सुख का अनुभव करते हैं, तो वह सुख कौन अनुभव करता है?

दादाश्री : खुद ही, खुद अपना खुद का अनुभव करता है। खुद अपना खुद का स्वानुभव सुख ही भोगता रहता है और फिर वे निरंतर गतिमान हैं। उन्हें काम क्या है, कि निरंतर ज्ञानक्रिया और दर्शनक्रिया चलती ही रहती है!

प्रश्नकर्ता : बाद में उन्हें क्या ज़रूरत है वहाँ, इस निरंतर ज्ञानक्रिया और दर्शनक्रिया की?

दादाश्री : वह तो स्वभाव है उनका। यह

जो लाइट है, वह यदि चेतन होती तो हमें निरंतर देखती ही रहती या नहीं? उसी प्रकार वह चेतन देखता ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : दादा, आत्मा मोक्ष में जाता है और फिर ज्ञाता-द्रष्टा बनता है, फिर उससे भी आगे बढ़ता है क्या?

दादाश्री : फिर आगे बढ़ने का रहा ही कहाँ कि वह बढ़े?

प्रश्नकर्ता : बस, एक स्थिर स्थिति हो गई?

दादाश्री : फिर वही परमात्मा जीवन, बस। जिसे हम ढूँढ रहे हैं, अनंत जन्मों से क्या ढूँढ रहे हैं? तब कहते हैं, 'सुख।' लेकिन सुख आने के बाद दुःख आता है, वह पसंद नहीं है। सनातन सुख चाहिए। सनातन सुख, वह खुद का स्वभाव है।

माध्यम के बिना भोगता है निजानंद

प्रश्नकर्ता : ये जो जीव सिद्धगति में जाते हैं, वे वहाँ परमानंद में रहते हैं, वे किस माध्यम से परमानंद का अनुभव कर सकते हैं, भोग सकते हैं? जैसे कि हम *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है) के माध्यम से आनंद का अनुभव कर सकते हैं न, वैसा कोई माध्यम हो, तो वे परमानंद का अनुभव कर पाएँगे न?

दादाश्री : किसी माध्यम की ज़रूरत नहीं है?

प्रश्नकर्ता : किस प्रकार अनुभव कर सकते हैं वे? वह चेतन तत्त्व खुद कैसे अनुभव कर सकता है?

दादाश्री : खुद अपने खुद के सुख का ही अनुभव करते हैं। क्योंकि ज्ञानक्रिया और दर्शनक्रिया चलती ही रहेगी। ज्ञानक्रिया और दर्शनक्रिया करने का फल क्या है? तो कहते हैं, 'निरंतर आनंद रहा करता है', बस इतना ही।

वहाँ माध्यम की ज़रूरत नहीं है। माध्यम हो तो परवश कहा जाएगा, परवशता कहलाएगी। यदि माध्यम की ज़रूरत होगी तो परवशता कहलाएगी। और परवशता कहलाएगी तो उसे मोक्ष नहीं कहेंगे।

आधारित संबंध नहीं है उनका। यह जो लाइट (सिद्ध भगवान) है न, उनका आधार-आधारित संबंध नहीं है।

प्रश्नकर्ता : मोक्ष में जो सुख है, वह किस आधार पर है? उसका आधार तो है ही न?

दादाश्री : वह दृश्यों और ज्ञेयों के आधार पर है। आत्मा, वह खुद ज्ञाता-द्रष्टा है और उसका सुख दृश्यों और ज्ञेयों के आधार पर है। वर्ना, खुद तो निरालंब है, उसे आधार कैसा?

ज्ञेय बगैर आत्मा सिद्धक्षेत्र में भी नहीं रहता

प्रश्नकर्ता : जब आत्मा स्वरूप में रहता है, तो क्या उस समय उसे किसी ज्ञेय की ज़रूरत होती है? आत्मा जब स्वरूप में रहता है तब ज्ञेय तो कोई होता ही नहीं न? जिसके पास ज्ञान है, क्या उसे ज्ञेय की ज़रूरत पड़ती है?

दादाश्री : वह (ज्ञेय) तो होता ही है, ज्ञेय बगैर ज्ञान रहेगा ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : यदि आत्मा खुद संपूर्ण ज्ञान स्वरूप हो, खुद के आत्म स्वभाव में, स्वरूप में, तब उसे ज्ञेय की ज़रूरत पड़ती है क्या?

दादाश्री : होगी ही न! ज्ञेय बगैर तो आत्मा रहेगा ही नहीं। वर्ना आत्मा है, ऐसा पक्का ही नहीं हो पाएगा। ज्ञेय के बिना आत्मा कहीं भी, सिद्ध स्थान में भी नहीं रह सकता। ज्ञेय और दृश्य के साथ ही रहता है, अकेला नहीं रह सकता। जैसे कि सिनेमा देखने वाला व्यक्ति यदि सिनेमा में 'एन्ड' लिखा हुआ आए तो क्या देखेगा फिर?

प्रश्नकर्ता : अर्थात् दादाजी, ज्ञान में ज्ञेय झलकते हैं। यदि ज्ञेय नहीं हो तो यों ज्ञान नहीं रह सकता?

दादाश्री : नहीं! उड़ जाएगा।

प्रश्नकर्ता : दर्पण तो रहता है, दादाजी। ज्ञेय चला जाए तो भी दर्पण तो रहता ही है। दर्पण में ज्ञेय झलकते हैं। ज्ञेय चले जाएँ तो दर्पण तो, उसका प्रकाश तो है ही।

दादाश्री : वैसा दर्पण में रहता है, इसमें नहीं रहता। एक क्षण के लिए भी नहीं रहता।

ज्ञेयों को देखने में स्वाभाविक आनंद

प्रश्नकर्ता : तो उसके पास में अन्य जो शुद्ध हुआ आत्मा रहता है, क्या वह ज्ञेय है?

दादाश्री : वह ज्ञेय नहीं है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह ज्ञेय नहीं है, ठीक है।

दादाश्री : ज्ञेय को देखता है। ज्ञेय के अलावा अन्य कुछ नहीं देखता।

प्रश्नकर्ता : वह ज्ञेय को देखता है या ज्ञेय उसके ज्ञान में झलकते हैं?

दादाश्री : वे तो झलकते हैं। ऐसा तो हम लोगों को समझाने के लिए कहते हैं कि, 'देखता है'। जैसे कि दर्पण में झलकते हैं न, उसी तरह झलकते हैं।

प्रश्नकर्ता : देखने वाला कहा है तो क्या फिर बीच में वह देखने वाला कोई उत्पन्न हो जाता है?

दादाश्री : नहीं! वह तो बुद्धि को समझाने के लिए भाषा में ऐसा लिखना पड़ता है!

प्रश्नकर्ता : वह शब्दों में ठीक है।

दादाश्री : भीतर झलकते हैं ये। पूरे जगत् के सभी ज्ञेय झलकते रहते हैं। और झलकते हैं, उसमें इन्टरेस्ट भी आता है।

प्रश्नकर्ता : वह कैसा?

दादाश्री : स्वाभाविक इन्टरेस्ट।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जहाँ स्वाभाविक रूप से ही दिखाई देता है वहाँ इन्टरेस्ट नाम की चीज़ होगी ही नहीं न?

दादाश्री : वहाँ इन्टरेस्ट या डिसइन्टरेस्ट होता ही नहीं लेकिन वह देखता है। इसलिए देखने से आनंद होता है, वर्ना आनंद नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : देखता है इसलिए आनंद होता है?

दादाश्री : देखता है और जानता है, इसीलिए आनंद होता है।

प्रश्नकर्ता : अभी भी अंदर देखता ही रहता है न! और क्या करता है?

दादाश्री : वही करता रहता है। और कुछ भी नहीं करता। अभी भी अंदर देखता ही रहता है। देखता है और जानता है, वही काम है।

हानि-वृद्धि के नियम से दिखाई देता है, नया-नया

प्रश्नकर्ता : दादा, सिद्धों को जो आनंद होता है, नया-नया दिखाई देता, वह किस आधार पर?

दादाश्री : सिद्ध भगवानों को अनंत आनंद किस बात का है? निरंतर नया ही दिखाई देता है। क्यों? तब कहते हैं, 'निरंतर हानि-वृद्धि के नियम से।'

जो देखना होता है, उसमें भी हानि-वृद्धि होती रहती है। रात होती है तो इस एक भाग में हानि होती है, दूसरे भाग में वृद्धि होती है, इस प्रकार हानि-वृद्धि होती है। और अपने यहाँ सुबह के पाँच बजे, तभी से ये सारे लोग दिखाई देते हैं।

उन्हें भी वास्तव में वृद्धि हुई कब दिखाई देती है? तब कहते हैं, दस, ग्यारह, बारह बजे दोपहर में बहुत से लोग घूमते हैं। इधर घूमते हैं, उधर घूमते हैं, सब दिखाई देता है। उन्हें सिर्फ देखना और जानना होता है, दो ही चीज़ों में गहराई में नहीं उतरना होता कि यह चोर चोरी करने निकला है। यों चोरी करता हुआ, जेब काटता हुआ भी उन्हें दिखाई देता है। लेकिन उन्हें देखना और जानना ही है, उनमें विषय नहीं है। विषय अर्थात् सब्जेक्ट नहीं है। कौन सा विषय है? तब कहते हैं, 'जेब काटने का।' तब वे कहते हैं, 'नहीं, वह विषय लोगों के जानने के लिए है! हमें ऐसा कुछ भी नहीं है।'

यानी कि अभी वहाँ सिद्ध स्थान में जो आत्मा हैं, तो वहाँ वे सभी आत्मा ज्ञाता-द्रष्टा हैं, लेकिन यदि वे अपने देश की तरफ देखें तो सुबह के चार बजे थोड़ा-थोड़ा दिखाई देता है, तब ये घूमते-फिरते कम दिखाई देते हैं। तब उन्हें ज्ञेय और दृश्य दिखाई देते हैं। लगभग चार बजे, पाँच बजे जब सभी लोग उठ जाते हैं, जानवर वगैरह सभी। तो वे जब घूम-फिर रहे होते हैं न, तब वे सभी दिखाई देते हैं। फिर छः बजे ज़्यादा दिखाई देता है, सात बजे उससे भी ज़्यादा दिखाई देता है, आठ बजे, नौ बजे तक बढ़ता ही जाता है। फिर बारह बजे तक बढ़ता है। फिर रात में वापस कम होता जाता है। अतः इसके ये जो ज्ञेय हैं न, वे घूमते-घूमते कम होते जाते हैं। बढ़ते हैं, कम होते हैं, बढ़ते हैं, कम होते हैं। वह सब चलता रहता है और जो देखा था, उसका विनाश हो जाता है और (फिर) नया देखना, उनकी दृष्टि में ऐसा है।

वहाँ भी उत्पन्न होना, विनाश होना, वह तो है ही। उत्पन्न होना और विनाश होना, होता रहता है। जब पूछे, 'क्या उत्पन्न होता है?' तब कहते हैं, 'हमने हाथ ऊँचा किया, वह वहाँ पर बैठे-बैठे उनके ज्ञान में दिखाई दिया।' फिर हाथ को नीचे किया तो उस अवस्था का विनाश हुआ। अवस्था का उत्पन्न होना, विनाश होना, ऐसा सब देखते ही रहते हैं। सबकुछ दिखाई देता रहता है। उत्पन्न होता है और विनाश होता है, उत्पन्न होता है और विनाश होता है। रात में कोई दिखाई देता है? तब अमरीका में दिखाई देता है। उन्हें तो सभी तरफ से दिखाई देता है न! लेकिन तब इस कोने का नहीं दिखाई देता। उन्हें सब सोए हुए ही दिखाई देते हैं फिर भले ही मकान में सो गए हों। उनका ज्ञान मकान के आरपार चला जाए, वैसा होता है। यदि शराब पीकर सो गए हों तो वे जान जाते हैं सब। सभी कुछ जान जाते हैं। विज्ञान है यह तो!

अहंकार रूपी मलिनता दर्पण में

प्रश्नकर्ता : दर्पण में देखने पर उसमें अपना प्रतिबिंब दिखाई देता है तो वह किसका गुणधर्म है।

दादाश्री : दर्पण का गुणधर्म है। दीवार में नहीं दिखाई देता।

प्रश्नकर्ता : यदि यह दर्पण मलिन हो तो?

दादाश्री : मलिन होगा तो मलिन दिखाई देगा।

प्रश्नकर्ता : मलिन दिखाई देगा अथवा नहीं भी दिखाई देगा।

दादाश्री : नहीं भी दिखाई दे।

प्रश्नकर्ता : हाँ। तो वह मलिनता क्या है?

दादाश्री : मलिनता, वह आवरण है, इस इगोइज़म (अहंकार) का। 'मैं कुछ हूँ', वह आवरण, मलिनता है।

प्रश्नकर्ता : अच्छा, इगोइज़म! ठीक है। उसे हम अहम् कहते हैं।

दादाश्री : हाँ, अहम्।

उस दर्पण पर मैल चिपक गया इसलिए

यह फोटो ऐसा दिखाई देता है। यदि मैल नहीं होता तो साफ फोटो आता।

जितना-जितना मैल, वैसा ही उसका फोटो। मैल चला जाए तो फर्स्ट क्लास फोटो। तीर्थंकर, वे मैल रहित (शुद्ध) फोटो कहलाते हैं। कितनी सुगंधी! कितनी उनकी लावण्यता! जगत् में होती ही नहीं वैसी लावण्यता!

प्रश्नकर्ता : अब अहम् कहाँ से आया?

दादाश्री : मूल (मुख्य) रूप से तो 'यह' 'लाइट (आत्मा) है' लेकिन जगत् के लोगों ने कहा, 'आप चंदूभाई हो' और आपने भी मान लिया कि 'मैं चंदूभाई हूँ'! अत: 'इगोइज़म' उत्पन्न हो गया। वह 'इगोइज़म' मूल लाइट का 'रिप्रेज़ेन्टेटिव' (प्रतिनिधि) बना और जिसने उस 'रिप्रेज़ेन्टेटिव' की लाइट के माध्यम से देखा, वह बुद्धि (उत्पन्न) हुई!

वह अहम् कहाँ से आया, वह समझ में आया न? वह विशेष भाव है। आत्मा का विशेष भाव है, स्वभाव नहीं है।

दो वस्तुओं के मिलने से दोनों के स्वभाव में परिवर्तन नहीं होता परंतु 'अज्ञान दशा में' तीसरा 'विशेष भाव' उत्पन्न हो जाता है। जैसे कि इस पुस्तक को दर्पण के सामने रखें तो पुस्तक अपना स्वभाव नहीं बदलेगी। तब क्या दर्पण अपना स्वभाव बदल लेता है? नहीं, दर्पण तो खुद के स्वभाव में ही है। परंतु जब उसके सामने जाते हैं तो 'वह' खुद का स्वभाव भी बताता है और 'विशेष भाव' भी बताता है, यह बहुत सूक्ष्म बात है। साइन्टिस्टों को जल्दी समझ में आती है।

(व्यवहार) आत्मा को दूसरा तत्त्व मिला इसलिए इस (आत्मा) तत्त्व को, उसे खुद को ऐसा लगा कि 'वास्तव में मैं ही हूँ' यह। उसी के साथ 'मैं और मेरा' उत्पन्न हो गया और क्रोध-मान-माया-लोभ उत्पन्न हो गए।

बिलीफ बदलने से अहंकार उत्पन्न हुआ

आत्मा आया भी नहीं है और गया भी नहीं। ये सब तो बुद्धि के खेल हैं। बुद्धि से यह सब भासित होता है। ये बुद्धि और अहंकार चले जाएँ तो मुक्त ही है। ये बुद्धि और अहंकार उत्पन्न हो गए हैं इसलिए यह सब दिखाई देता है।

मनुष्य बाहर निकलता है तो परछाई कहाँ से आती है? सभी संयोगों के कारण। सूर्य का संयोग मिल जाए तो परछाई उत्पन्न हो जाती है, दर्पण का संयोग मिल जाए तो प्रतिबिंब उत्पन्न हो जाता है। यानी यह सब संयोगों के कारण हुआ है और इसलिए पूरी बिलीफ बदल गई है। 'स्वरूप' तो वही का वही है, लेकिन बिलीफ बदल गई है कि यह क्या हो गया? यह चिड़िया दर्पण में चोंच नहीं मारती? चिड़िया दर्पण में चोंच मारती है न? अब मनुष्य ऐसा नहीं करता। क्योंकि वह जानता है कि यह तो मेरा ही फोटो है। लेकिन चिड़िया की बिलीफ बदल गई है कि यह दूसरी चिड़िया आई है, इसलिए उसे चोंच मारती रहती है। लेकिन बहुत दिनों के अनुभव के बाद फिर वह बिलीफ टूट जाती है। इसी प्रकार यह 'बिलीफ' ही बदली हुई है। पूरी 'बिलीफ' ही 'रोंग' हो गई है, इसलिए अहंकार उत्पन्न हो गया है और इसीलिए बुद्धि उत्पन्न हो गई है। और बुद्धि उत्पन्न हो गई, इसलिए बुद्धि के आधार पर, बुद्धि की 'लाइट से' चलता है, और वह मूल लाइट बंद हो गया है। इसलिए उलझ गया है सभी कुछ। आत्मा में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ है। आत्मा का कुछ बिगड़ा भी नहीं है, न ही आत्मा पर कुछ असर हुआ है।

मनुष्य बाहर निकलता है, तो परछाई पीछे-पीछे घूमती है न? यह सब परछाई जैसा ही है। कोई मनुष्य परछाई में ऐसे-ऐसे करे, एक उँगली ऊँची करे, दो उँगलियाँ ऊँची करे, ऐसे-वैसे देखे,

तो हम नहीं समझ जाएँ कि इसका दिमाग़ ज़रा बिगड़ गया है? इसी तरह जब खुद का भान हो जाए, तब फिर जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो उस तरह से संयोगों में से छूट जाता है। यानी कि ये संयोग इकट्ठे हो गए हैं, और कुछ नहीं। और परछाई को निकालने के लिए अगर रोड पर दौड़ता रहे तो परछाई चली जाएगी? नहीं। वह तो ऐसे दौड़े तो पीछे दिखती है, नहीं तो इधर घूम जाए तब भी वापस दिखती है। तो फिर वह आदमी चाहे कैसे भी वापस घूमे फिर भी कुछ न कुछ दिखता ही रहता है न? यानी कि परछाई उसे छोड़ती नहीं है। अब उसे कोई बताए कि 'तू घर में घुस जा न' तो परछाई बंद हो जाएगी!

अत: यह तो सिर्फ बिलीफ रोंग हुई है, अन्य कुछ नहीं है। आत्मा ने कर्म बाँधे ही नहीं और यह सब यों ही चला आ रहा है। कर्म बाँधे ही नहीं हैं। यदि आत्मा कर्म बाँधता न, तो उसका हमेशा का स्वभाव हो जाता है। फिर वह जाता ही नहीं। ये तो जबरन सारी गलत समझ बैठा दी है।

संयोगों में 'बिलीफ' से उलझन

ऐसा है, तालाब में वे पौधे उगते हैं, कमल जैसे। उसके ऐसे ऊँचे फूल होते हैं। उस पर तोता आकर बैठता है न, तो वह (पौधा) यों झुक जाता है। तब तोते को वहम हो जाता है कि, 'मैं गिरा, मैं गिरा!' इसलिए वह पौधे को पकड़ लेता है। उससे तोता भी उल्टा लटक जाता है। फिर उल्टा लटकने के बाद तोता उसे छोड़ नहीं सकता। 'अब, मैं मर जाऊँगा।' फिर वह छोड़ता ही नहीं है। तो मज़बूरन, जब तक शिकारी पकड़ नहीं लेता तब तक वह (फूल को) नहीं छोड़ता। उसे उलझन हो जाती है, उड़ना ही भूल जाता है, सारा भान ही भूल जाता है। ऐसी उलझन हो जाती है, 'अब मैं गिर जाऊँगा।' उसी प्रकार कैसी-कैसी उलझनें हो जाती है जीवों को!

चिड़िया दर्पण में चोंच मारती रहती है। 'अरे, (दर्पण में) वह चिड़िया नहीं है! तेरी चोंच घिस जाएगी फिर भी कुछ नहीं मिलेगा।' फिर भी उसे अनुभव नहीं होता। देखते ही वह मारती है।

और बिल्ली को यों दर्पण दिखाओ तो? पहले तो वह भी उससे यों चौंक जाती है। फिर धीरे से ऐसे देखती है, वैसे देखती है, फिर समझ जाती है कि यह सही नहीं है, यह तो यों ही गलत दिखाई देता है। वह क्या है, उसका उसे पता नहीं चलता लेकिन उसे ऐसा लगता है कि वह गलत दिखाई दे रहा है। कोई है नहीं, वहाँ पर (दर्पण में) दूसरी बिल्ली नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि रोंग बिलीफ तो छोटे प्रकार के जीवों में भी हो जाती है?

दादाश्री : रोंग बिलीफ अर्थात् बैठे रहना, फिर वह छूटती नहीं।

प्रश्नकर्ता : तो एक इन्द्रिय जीव, दो इन्द्रिय जीव, सभी में इसी प्रकार से है? उन्हें भी रोंग बिलीफें होती हैं?

दादाश्री : उन सभी में होती ही हैं। रोंग बिलीफ से तो यह दशा हुई, संसारी दशा हुई, उसी को कहते हैं, रोंग बिलीफ! देव हो, एक इन्द्रिय हो, सभी में। यदि रोंग बिलीफ चली जाए तो भगवान बन जाए।

आत्मा की चैतन्यशक्ति ऐसी है कि, 'रोंग बिलीफ' से विकल्प होते हैं। 'यह मैं हूँ, यह मैं हूँ', उससे 'रोंग बिलीफ' खड़ी होती है और वही कर्मबंधन है। जैसे कि दर्पण में देखने से तुरंत ही फोटो आ जाता है, वैसे ही परमाणु सक्रिय होने के कारण जैसे ही विकल्प हुआ कि तुरंत ही वैसे सभी परमाणु उत्पन्न हो जाते हैं। मूल परमाणु 'तत्व स्वरूप' हैं। बाद में जब इकट्ठे होते हैं तब अवस्था वाले हो जाते हैं। ये सभी सक्रिय

के चमत्कार हैं। आत्मा को यह *पुद्गल* तत्व ही उलझाता है। उसकी सक्रियता ही उलझाती है। *पुद्गल* की सक्रियता ऐसी है कि स्वयं अजीव है फिर भी जीव जैसा भासित होता है।

बिलीफ से, जैसी कल्पना करे वैसा ही हो जाता है

दर्पण में जो चिड़िया दिखाई देती है, उसे बाहर वाली चिड़िया यों देखती है फिर उसे चोच क्यों मारती है? क्योंकि इसे ऐसा लगता है कि इसमें (दर्पण में) कौन है? यह कौन कर रहा है? उसी प्रकार आत्मा में प्रतिबिंब दिखता है।

प्रश्नकर्ता : दर्पण में प्रतिबिंब दिखने से आत्मा पर इतना ज़्यादा असर क्यों हो जाता है?

दादाश्री : एक रूम में ऊपर-नीचे चारों तरफ दर्पण लगाए हुए हों और उसमें यदि कोई आँखें बंद करके प्रवेश करे तो उस पर कुछ भी असर नहीं होगा। लेकिन यदि खुली आँखों से प्रवेश किया जाए तो उसे तरह-तरह का सब दिखाई देगा। अतः तरह-तरह का असर होगा।

चिड़िया यदि दर्पण के सामने आकर बैठे तो उसमें दर्पण क्या करेगा? दर्पण तो वैसे का वैसा ही है लेकिन अपने आप ही दूसरी चिड़िया अंदर दिखाई देती है। उसके जैसी ही आँखें, उसके जैसी ही चोंच देखती है और उससे उस चिड़िया का ज्ञान नहीं बदलता परंतु बिलीफ (मान्यता) बदल जाती है और वह ऐसा मानती है कि खुद के जैसी ही दूसरी चिड़िया है। इसलिए दर्पण वाली चिड़िया को चोंच मारती रहती है। उसी प्रकार इस जगत् में भी है। स्पंदन से यह जगत् उत्पन्न हुआ है। एक ही स्पंदन किया, उससे सामने कितने ही स्पंदन उत्पन्न हो जाते हैं। ज्ञान नहीं बदलता परंतु बिलीफ बदल जाती है। बिलीफ प्रतिक्षण बदलती रहती है। यदि ज्ञान बदलता होता तो आत्मा रहता ही नहीं। क्योंकि आत्मा और ज्ञान, ये दोनों एक-दूसरे से कोई अलग वस्तु नहीं हैं। आत्मा का स्वरूप ही ज्ञान स्वरूप है। जैसे कि वस्तु और वस्तु के गुण साथ ही रहते हैं और अलग होते ही नहीं उसी तरह! यह तो ऐसा है कि बिलीफ में परिवर्तन होने पर वैसा ही दिखाई देता है। फिर जैसी कल्पना करे वैसा ही हो जाता है।

दर्पण तो आश्चर्य है! परंतु लोगों के लिए सहज हो गया है इसलिए दिखाई नहीं देता। यह तो ऐसा है न, कि लोग दिन भर दर्पण में चेहरा देखते रहते हैं। कंघी करते है, पफ-पावडर लगाते हैं, इसीलिए तो ये दर्पण सस्ते हो गए हैं। वर्ना दर्पण तो अलौकिक चीज़ है! ऐसी है *पुद्गल* की करामत!

ज्ञान नहीं, बदली है सिर्फ बिलीफ

चिड़िया का यदि ज्ञान बदल गया होता न, तो वह चोंच मार-मारकर मर ही जाती। लेकिन ज्ञान नहीं बदला है, उसकी बिलीफ बदली है फिर वहाँ से उड़ने के बाद कुछ भी नहीं। जब वापस आती है तब वापस बिलीफ खड़ी हो जाती है कि 'यह वही है'। लेकिन अगर वापस उड़ जाए तो कुछ भी नहीं। उसमें तो उड़ने के बाद अगर यह ज्ञान बदल जाए तो खत्म ही हो जाएगा। लेकिन ज्ञान नहीं बदलता।

अर्थात् दर्शन में भ्रांति है, ज्ञान में भ्रांति नहीं है। दर्शन में भ्रांति यानी कि 'मैं हूँ' उसका भान है लेकिन वह 'मैं' क्या है, उसकी समझ नहीं है। जैसे कि झूले में बैठने से पहले समझता है कि खुद ठीक है, तबीयत अच्छी है लेकिन झूले में बैठने के बाद जब उतरता है तब उल्टी होती है, चक्कर आते हैं और सबकुछ घूमता हुआ दिखाई देता है। तब हम से क्या कहता है, 'अरे! यह सब घूम रहा है, यह सब घूम रहा है।' तब हमें उसे पकड़ लेना पड़ता है। 'यह सबकुछ घूम रहा है' कहता है, वही भ्रांति है। उसके बाद पता चलता है कि पहले तो मैं अच्छा था लेकिन यह जो घूमता हुआ दिखाई दे रहा है,

वह मैं नहीं घूम रहा हूँ, भ्रांति के बारे में उतना भान होता है। लेकिन इन सभी को तो ऐसा ही लगता है कि 'मैं ही कर रहा हूँ' अर्थात् भ्रांति है, वह भी पता नहीं है। हिन्दुस्तान में अभी ऐसे लोग हैं जिन्हें भ्रांति के बारे में पता है।

प्रश्नकर्ता : इस जगत् में मान्यताओं की वजह से ही ये सारी तकरारें हैं न? द्वंद्व खड़े हो गए हैं न?

दादाश्री : हाँ, सिर्फ बिलीफ ही बिगड़ी है। उसी से संसार खड़ा हो गया है। पूरा संसार बिलीफ बिगड़ने से ही खड़ा है। अब दो वस्तुओं को साथ में रखने से विशेष भाव उत्पन्न हुआ, उसके बाद बिलीफ बिगड़ी। जैसे कि जब चिड़िया चोंच मारती है न, उस समय अहंकार काम करता है। चोंच मारने वाला वह खुद ही है और वह चोंच किसे मारता है? वह ऐसा मानता है कि यह चीज़ मुझसे अलग है। अर्थात् उसकी बिलीफ बदली हुई है।

आत्मा की विमुखता से लेकर सन्मुख होने तक की ये सारी क्रियाएँ चलती रहती हैं। तो कितनी ही बातों में आपकी (महात्माओं के लिए) ये मान्यताएँ टूट चुकी हैं और कितनी ही बातों में अभी मान्यताएँ बाकी रही हुई हैं, और संसारियों को जैसे-जैसे अनुभव होते हैं न, वैसे-वैसे कुछ-कुछ मान्यताएँ टूटती जाती हैं। हमारी सभी मान्यताएँ संपूर्ण रूप से छूट चुकी हैं। अर्थात् यदि ये मान्यताएँ छूट जाएँ न, तो खुद मुक्त ही है। इसमें ज्ञान नहीं बदला है, मान्यताएँ बदल गई हैं।

मूलतः आत्मा तो संपूर्ण प्रकाश वाला है

मूलतः तो यह आत्मा संपूर्ण प्रकाश वाला है। दर्पण में कभी हम न दिखाई दे ऐसा तो कभी हो ही नहीं सकता न! लेकिन अगर बाहर की हवा खराब हो जाए, वातावरण खराब हो जाए तो फिर हम दर्पण में दिखाई नहीं देंगे, ऐसा होता है न! होता है या नहीं होता?

प्रश्नकर्ता : कोहरा हो या वैसा कुछ तो कभी ऐसा हो सकता है।

दादाश्री : तो वातावरण का असर हो गया है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यदि आत्मा ही खुद परमात्मा है तो उसे ऐसा सब क्यों होता है? वह मोह में क्यों पड़ता है?

दादाश्री : कुछ भी नहीं हुआ है, मोह में नहीं पड़ा है, फँस गया है। खुद अपने आप तो कोई पड़ेगा ही नहीं।

दर्पण में दिखा व्यवहार आत्मा

आपको मूल हकीकत बता देता हूँ। दो प्रकार के आत्मा हैं, एक मूल आत्मा है और उस मूल आत्मा के कारण उत्पन्न होने वाला दूसरा यह व्यवहार आत्मा है। मूल आत्मा निश्चय आत्मा है, उसमें कोई परिवर्तन हुआ ही नहीं है। वह जैसा है वैसा ही है और उसकी वजह से व्यवहार आत्मा उत्पन्न हो गया है।

जिस प्रकार दर्पण के पास जाने से तू बाहर भी दिखाई देता है और अंदर चंदूभाई भी दिखाई देते हैं। दिखाई देते हैं या नहीं?

प्रश्नकर्ता : दिखाई देते हैं, अलग हैं।

दादाश्री : क्या अलग है?

प्रश्नकर्ता : देखने वाला यहाँ बाहर है, दर्पण में नहीं।

दादाश्री : यों तो तू ऐसा कहेगा तो वह भी ऐसा कहेगा। किसकी बात सही मानें?

प्रश्नकर्ता : वहाँ भी देखता ही है न, दर्पण में, वह भी मैं देख रहा हूँ।

दादाश्री : वह ठीक है। यह जो बाहर है, वह कौन सा आत्मा है? वह निश्चय आत्मा है। निश्चय आत्मा पर आवरण नहीं चढ़ा है और व्यवहार आत्मा, वह है जो दर्पण में दिखाई देता है। और वह अपना रोल अदा कर रहा है और इसमें तुझे मैं-पन है, 'मैं कर रहा हूँ', ऐसा है और इसीलिए यह सब हो गया है। तो इस प्रकार से अलग है। जिस प्रकार तुझे प्रतिबिंब दिखाई देता है न? हो एक ही। व्यवहार आत्मा अर्थात् जिसकी वृत्तियाँ व्यवहार में पिरोई हुई हैं, ऐसा आत्मा। अर्थात् अहंकार उत्पन्न हो गया। 'मैं कर रहा हूँ और यह मेरा है', ऐसा भान उत्पन्न हो गया। 'मैं चंदूभाई हूँ और यह मेरा शरीर है' और 'यही आत्मा है और यही मेरा शरीर है' और देह को ही आत्मा मानता है। इस देह में आत्मबुद्धि है कि, 'यह मैं हूँ।' देह में आत्मबुद्धि रहे, उसी को भ्रांति कहते हैं। अत: यह भ्रांति वाला आत्मा है, माना हुआ आत्मा है, यह सिर्फ अहंकार है। अहंकार खत्म हो जाए तो वापस मूल आत्मा बन जाएगा। यह भ्रांति वाला आत्मा लेपायमान भावों वाला है। यह आत्मा ऐसा है, जो लेपित हो जाता है लेकिन मूल जो असल आत्मा है, उस पर लेप नहीं चढ़ता। अर्थात् दो आत्मा नहीं हैं, एक ही आत्मा में दो विभाग हो गए हैं। क्योंकि (व्यवहार) आत्मा में खुद को खुद का रियलाइज़ेशन (भान) नहीं हुआ है तो अहंकार उत्पन्न हो गया और अहंकार को ही ऐसा हो गया कि 'यह मैं हूँ और यह मेरा है', उसी से नया आत्मा बन गया, व्यवहार आत्मा।

प्रश्नकर्ता : यह जो दर्पण में दिखाई देता है, वह निश्चय आत्मा है और बाहर यह जो व्यवहार आत्मा है या फिर जो बाहर है, वह निश्चय आत्मा है और दर्पण में जो दिखाई देता है, वह व्यवहार आत्मा है?

दादाश्री : दर्पण में जो दिखाई देता है, वह व्यवहार आत्मा है और बाहर जो है, वह निश्चय आत्मा है। वास्तविक यह है, और वह व्यवहार (आत्मा)। बाहर वाला यदि नीचे बैठ जाए तो क्या वह दर्पण में दिखाई देगा? तो अब नहीं दिखाई दे रहा है। अब यदि जो निश्चय आत्मा है, वह सहज है तो व्यवहार आत्मा को सहज करो। तो दोनों एक हो जाएँगे। फिर हम हमेशा के लिए परमात्मा बन जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : व्यवहार आत्मा की उत्पत्ति कैसे हुई?

दादाश्री : उसकी उत्पत्ति है ही नहीं न, वह तो शुरू से है ही। अनादिकाल से है ही। लेकिन उसका अंत आएगा। जब उसे ज्ञानी पुरुष मिलेंगे तब अंत आएगा।

यह तो, समसरण मार्ग में सिर्फ व्यवहार खड़ा हो गया है। क्या दर्पण के सामने व्यवहार खड़ा नहीं हो जाता? दर्पण के सामने कुछ दिखाई देता है या नहीं? क्या वह 'एक्ज़ेक्ट' व्यवहार नहीं है? हम जैसा करते हैं, वह भी 'एक्ज़ेक्ट' उतना ही करता है न? दर्पण के व्यवहार को लोग घोलकर पी गए! अपना यह व्यवहार भी वैसा ही है, और कुछ नहीं है।

निश्चय से एक लेकिन पात्र को लेकर अलग-अलग

प्रश्नकर्ता : आत्मा दर्पण जैसा है और *पुद्गल* दर्पण जैसा हो गया है। यानी कि इसका (आत्मा का) प्रतिबिंब उसमें पड़ता है, उसका प्रतिबिंब फिर इसमें पड़ता है इसीलिए वे अनंत पर्याय दिखाई देते हैं। इसी तरह की बात निकली थी, तो इसमें भी प्रिन्सिपल है कि यदि दो दर्पणों को आमने-सामने रखेंगे न, तो लाखों प्रतिबिंब दिखाई देंगे, बीच में रखी हुई चीज़ों के।

दादाश्री : वे तो पाँच लाख घड़े रखे हों न समुद्र किनारे, तो पाँच लाख चंद्र दिखाई देंगे, जबकि पूरे समुद्र में एक ही चंद्र दिखाई देगा, उसी तरह का है यह।

प्रश्नकर्ता : पाँच लाख प्रतिबिंबों के लिए प्रत्येक घड़ा काम करता है, अलग-अलग घड़ा काम करता है, तो इसमें क्या काम करता है? कौन काम करता है?

दादाश्री : वे जो अलग हैं, वे एक हो जाते हैं इसलिए एक ही दिखाई देता है फिर।

प्रश्नकर्ता : हाँ। लेकिन इसमें कौन काम करता है? पाँच लाख घड़ों में वह प्रत्येक घड़ा अलग-अलग प्रतिबिंब कैच करता है, उसी प्रकार इसमें कौन है ऐसा बीच में?

दादाश्री : ये पात्र। सभी में आत्मा है इसलिए अलग-अलग दिखाई देते हैं न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : निश्चय से एक ही हैं सभी चीज़ें, लेकिन व्यवहार से अलग-अलग हैं। जब तक पात्र है तब तक आत्मा अलग-अलग है, परमात्मा रूप में एक ही है।

दर्पण में झलकती हैं बदलती अवस्थाएँ

आत्मा खुद अपने ही स्वक्षेत्र में है। और उसमें इस प्रकार से सभी अवस्थाएँ बदलती ही रहती हैं। क्योंकि अवस्था किस तरह बदलती है? कि यहाँ पर दर्पण हो और अगर आप अकेले आओगे तो अकेले ही (सिर्फ आप ही) दिखाई दोगे, अगर दो लोग आओगे तो दो दिखाई दोगे, चार लोग आओगे तो...

प्रश्नकर्ता : चारों दिखाई देंगे।

दादाश्री : अब ये सभी अवस्थाएँ बदलीं या नहीं बदलीं?

प्रश्नकर्ता : बदलीं।

दादाश्री : उनका धर्म बदलता रहता है लेकिन गुण नहीं बदलते। उसी प्रकार से सिद्ध भगवान के आत्मा में जगत् झलकता (प्रतिबिंबित होता) है और जिस भाग वाले लोग सो गए हैं, उनमें कुछ हिलते-डुलते हैं, तो उन्हें देखते हैं। अर्थात् उषा काल में तीन-चार बजे अनंत भाग वृद्धि होती है इसलिए सुबह कुछ लोग चलते-फिरते दिखाई देते हैं। उसके बाद असंख्यात भाग में वृद्धि होती है। फिर संख्यात भाग में वृद्धि होती है। फिर संख्यात गुण वृद्धि होती है। फिर असंख्यात गुण वृद्धि और अनंत गुण वृद्धि होती हैं। बारह बजे तो झुंड के झुंड लोग होते हैं, वह सब उसी में झलकता है।

अब, पहले अनंत गुण हानि आएगी। फिर असंख्यात गुण हानि आएगी। फिर संख्यात गुण हानि आएगी। फिर संख्यात भाग हानि। उसके बाद असंख्यात भाग हानि और अनंत भाग हानि। यह उसका गुणधर्म है, जो बदलता ही रहता है। निरंतर बस यही है! खुद को कुछ करना नहीं रहता। उसका धर्म बदलता रहता है। उसके अंदर झलकता है। बोझ नहीं है, दर्पण को कभी बोझ लगता है क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : हम उसके सामने नखरे करें तो दर्पण को नुकसान है या हमें नुकसान है? दर्पण का नुकसान कहा जाएगा क्या? समझने जैसा है।

'स्व' में स्वस्थ, अवस्था में अस्वस्थ

दर्पण में यदि पहाड़ दिखाई दे तो क्या उससे दर्पण को वज़न महसूस होगा? उसी प्रकार से ज्ञानियों पर सांसारिक अवस्था का कोई असर नहीं होता।

पूरा जगत् अवस्था में स्वस्थ रहता है। वकील के पास जाए तो वह वकील कहता है कि 'तू मेरा मुवक्किल है'। तो वह मुवक्किल की अवस्था में स्वस्थ रहता है। अरे भाई, स्व में स्वस्थ रह! यदि अवस्था में अवस्थित रहेगा तो स्वस्थ कैसे रह सकेगा?

जब से गर्भ में आया, तभी से अवस्था में है। 'मैं' में गया कि अवस्था में चला जाता है और यदि 'स्व' में स्वस्थ हो जाएगा तो परमात्मा। अवस्था मात्र कुदरती रचना है, जिसका कोई बाप भी रचने वाला नहीं है। वह कुदरती रचना क्या है, वह सिर्फ मैं ही जानता हूँ।

यदि ऐसा जाने कि, 'जो कुछ भी टेम्परेरी है, वह 'मेरा नहीं है'' तो वही ज्ञान है। सभी पर्याय शुद्ध होने के बाद अनंतज्ञान कहलाएगा। ये सभी सूक्ष्म संयोग, अनंत पर्याय हैं। उनके शुद्ध होने पर अनंतज्ञानी कहलाएगा।

सभी पर्यायों को जानने जाएँगे तो कहाँ अंत आएगा? उसके बजाय तो 'मैं यह हूँ' और ये सभी पर्याय हैं, इतना जान लिया तो काम ही निकल जाएगा।

आत्मा की विभाविक अवस्था के कारण राग-द्वेष हैं और स्वाभाविक अवस्था के कारण वीतरागता है।

दर्पण के उदाहरण से, खोला अचल का भेद

प्रश्नकर्ता : आत्मा दर्पण जैसा है और आपने एक बार ऐसा भी कहा था कि जगत् भी दर्पण जैसा हो गया है, उसे समझाइए।

दादाश्री : हम अचल ही हैं लेकिन हम में नासमझी से चंचलता उत्पन्न हो गई है कि यह कौन आया? अत: जब हम उसे ऐसा करने जाते हैं तब वह भी वैसा ही करने जाता है, उसे कहते हैं जगत्। यह जगत् दर्पण जैसा हो गया है। ये आँखें ऐसी हैं कि दर्पण में से ही देखती हैं और खुद की ही सारी प्रक्रिया दिखाई देती है। खुद, खुद की ही प्रक्रियाओं में फँसा है, वर्ना कोई उसका नाम भी नहीं ले सकता। तो हमें यह तरीका जान लेना है कि अचल किस तरह से होना है। यहाँ का तरीका पता चलता है, यहाँ दर्पण में तो पता चलता है, उसका अनुभव होता है लेकिन संसार में अनुभव नहीं हो पाता। इसमें दर्पण जैसा ही होता है। जिस तरह दर्पण के सामने लोग जैसे-जैसे कूदते हैं वैसे-वैसे ही दर्पण में वे खुद ज़्यादा से ज़्यादा कूदते हुए दिखाई देते हैं और अगर हम बिल्कुल स्थिर हो जाएँ तो वह स्थिर हो जाता है, उसके बाद कुछ भी नहीं। अगर हम अचल हो जाएँ तो वह अचल हो ही जाएगा। यह जो सचर है, वह अचल परिणामी हो जाए, ऐसे भाव में आ जाएँ, और जिस प्रकार दर्पण के सामने हम चेष्टा नहीं करें तो दृश्य भी कुछ चेष्टा नहीं करेगा उसी तरह से यदि इसे अचल परिणामी कर दें तो अचल ही होता रहेगा। जिस प्रकार दर्पण के सामने खुद चेष्टा करता है, तो वह सचल परिणामी बन जाता है। चेष्टा नहीं करे तो खुद अचल परिणामी बन जाता है। लेकिन वह परमानेन्ट नहीं है, यह रिलेटिव अचल है। यह जो सचर है, वह रिलेटिव अचल बन जाएगा। हाँ, ये दृश्य तो विनाशी हैं। यदि आप आत्मा रूप बन गए तो सबकुछ गॉन।

सामने वाले का प्रतिबिंब भी खुद के भीतर दिखता है

प्रश्नकर्ता : दादा, कभी-कभी ऐसा होता है कि हम ज्ञान सेट करते हैं लेकिन वहाँ कोई आ जाए तो हमारे मन में बहुत ही खराब विचारों का फोर्स उठ जाता है, तब हिल जाते हैं।

दादाश्री : आत्मा का स्वभाव प्रकाशस्वरूप है, इसलिए तो उसमें जगत् का प्रतिबिंब दिखता है।

खुद को भी प्रकाश देता है और सामने वाले को भी प्रकाश देता है। 'सामने' वाले का प्रकाश तुझ पर पड़े और 'तुझे' जो दिखाई दे, उसमें उलझना मत। सामने वाले का प्रकाश आपको दिखाई देगा, सामने वाले का मन कैसा है, वह दिखाई देगा। लोभी आया हो तो उसका लोभ आपको दिखाई देगा। सामने वाले के सभी फोटो

दिखाई दे, वैसा है। कभी खराब विचार आए तो वह आपका नहीं है। सामने वाले का स्पंदन है। आपका ही है, ऐसा मानकर घबरा मत जाना।

वह जो पराया है, वह हमारे भीतर दिखाई देता है। जैसे कि दर्पण है न, उस दर्पण में जो दिखाई देती हैं, वह चीज़ बाहर है तो सही। खुद में प्रकाशित भाव है इसलिए भीतर दिखाई देता है, लेकिन है बाहर।

'स्व-पर प्रकाशित' स्वभाव है इसलिए उसे अंदर दिखाई देता है कि यह मेरे भीतर कुछ आ गया! वास्तव में भीतर नहीं आता। स्व-पर प्रकाशक है न इसलिए दिखाई देता है, हमें भी दिखाई देता है न! अब, हम कहाँ उलझ जाते हैं कि हमारे भीतर आ गया! नहीं, आता ही नहीं, और वह तो उसका स्वभाव है, इसलिए भीतर दिखाई देता है।

हम इस दर्पण से कहें, 'भीतर दिखाई न दे, ऐसा तू कर।' तब कहेगा, 'नहीं, वह तो दिखेगा।' कोई किसी के स्वभाव को छोड़ता नहीं न! अपने स्वभाव को जान लेना चाहिए।

स्वभाव दो प्रकार के हैं : एक जाति स्वभाव है और दूसरा है प्रकृति, बस। एक स्व-स्वभाव है और दूसरा है प्रकृति, बस। जगत् में अन्य कुछ है ही नहीं।

दर्पण शुद्ध होने पर दिखाई देती हैं भूलें

एक सूक्ष्म से सूक्ष्म भूल रहित वाला चारित्र कैसा होना चाहिए? वह भीतर दर्शन में होना चाहिए। दर्शन में सूक्ष्म से सूक्ष्म भूल नहीं रहे, ऐसा दर्शन होना चाहिए। तभी भूल दिखती है न! देखने वाला 'क्लियर' (प्योर) हो, तभी देख सकता है। इसलिए हम कहते हैं न, कि 360 डिग्री वाले जो भगवान हैं न, वे संपूर्ण 'क्लियर' (शुद्ध) हैं और हमारा 'अन्क्लिअरन्स' अशुद्ध दिखाते हैं। यह ज्ञान मिलने के बाद, सभी में 'दो' तो होते ही हैं। उन लोगों में भी 'दो' होते ही हैं। जिन्हें ज्ञान नहीं मिला है, उनमें भी 'दो' होते हैं और इनमें भी 'दो' होते हैं।

इस ज्ञान के बाद अंदर और बाहर देख सकते हैं। तो अंदर भूल बिना का चारित्र यह है, ऐसा वे दर्शन में देख सकते हैं। और भूल रहित चारित्र जितना उसके दर्शन में ऊँचा गया, उतनी ही, वे भूलें उसे दिखती हैं। भीतर जितना ट्रान्सपेरेन्ट (पारदर्शक) और क्लियर हुआ, दर्पण शुद्ध हुआ कि तुरंत अंदर दिखता है। उसमें झलकती हैं भूलें! भूल रहित चारित्र दर्शन में हो, वह कह देता है कि 'यह भूल हुई'

यह दर्पण है, वह एक ही व्यक्ति का चेहरा दिखाता है या सभी के चेहरे दिखाता है? जो कोई चेहरा सामने रखे, उसे दिखाता है। वैसा ही, दर्पण जैसा क्लीएरन्स हो जाए, तब काम का!

सामने वाले के प्रतिबिंब को मानना पराया

आत्मा का स्वभाव कैसा है? हर एक चीज़ भीतर दिखाई देती है, जिस तरह दर्पण में दिखाई देती है उसी तरह। कोई, दो-चार लोग आए हों और उनमें से कोई मानी हो तो उसका फोटो भी भीतर दिखाई देता है। तब हमें ऐसा लगता है कि हम में मान नहीं था और आया कहाँ से?

हम यहाँ बैठे हों और कोई आए तो उसके लोभ के, मान के परमाणुओं का असर होता है। यदि अपने अंदर होते तो वे पहले से ही नहीं दिखाई देते?

अत: लोग अपना ही दर्पण हैं, खुद का ही प्रतिबिंब देखने का साधन। इस भाई को मुझसे कुछ भी दु:ख हो जाए तो समझना है कि मुझसे भूल हुई है तो फिर मैं भूल सुधारे बगैर रहूँगा नहीं। कुछ व्यवहारिक भूल हुई हो तो सुधारनी तो पड़ेगी न? लेकिन इसमें करना कुछ नहीं है, सिर्फ जानना ही है।

कोई व्यक्ति हमें अच्छा नहीं लगता और वह व्यक्ति हमसे मिले, तब हमारी परिणति बिगड़ जाती है, तो उस सामने वाले के लिए तंत है इसलिए हम पर उसका असर होता है। वह सारा पराया माल है, हमें देखना और जानना है। आत्मा में प्रतिबिंब दिखता है, सामने वाले का।

प्रतिबिंब के प्रतिभासित होने से उत्पन्न हुई भ्रांति

प्रश्नकर्ता : सामने वाले का प्रतिबिंब दिखता है, उस बारे में और अधिक समझाइए।

दादाश्री : आत्मा ऐसी प्रकाशक वस्तु है कि जिसमें सिर्फ उसका ही नहीं लेकिन पूरे जगत् का प्रतिबिंब दिखता है, प्रतिभासित होता है। अत: खुद के मन में ऐसा होता है कि यह सब क्या है? कौन करता है यह सब? इस प्रकार घबराहट होती है।

आत्मा दर्पण जैसा है, भीतर सारे प्रतिबिंब दिखाई देते हैं। उसे देखकर घबरा जाता है कि, 'यह कौन कर रहा है? मैंने किया', ऐसी भ्रांति हो जाती है।

यह जगत् खुद के अंदर दिखाई देता है, वही *उपाधि* (परेशानी) है। उसी से जगत् उत्पन्न हुआ है।

आत्मा व्यवहार में आया है, इसलिए उसके प्रकाश में जगत् झलकता है। वास्तव में आत्मा के प्रकाश में पूरा जगत् झलकता है। अज्ञानता की वजह से वह 'खुद' कहता है कि यह क्या है? अर्थात् खुद जो कि द्रष्टा था, वह दृश्य बन गया!

लोग बिंब और प्रतिबिंब को समझे ही नहीं हैं, गलत ही समझे हैं। यदि पूरा जगत् चैतन्यमय ही होता तो फिर दु:ख कहाँ से आता?

इस दर्पण को यदि खुद को यह सारा जगत् दिखाई देता, दर्पण खुद देखने वाला होता तब तो उसे कितनी परेशानी हो जाती? उसी प्रकार यह चैतन्य खुद देखने वाला है। जब से वह जानने लगता है कि, 'ये सभी चीज़ें मेरे स्वभाव के कारण (मुझमें) प्रकाशमान होती हैं और चीज़ें तो बाहर ही हैं', तभी से वह खुद का सुख चखने लगता है और परेशानियाँ छूट जाती है! उसके बाद आत्मा का सुख नहीं जाता।

आत्मा के बारे में 'ऐसा' समझाना, वह बहुत बड़ी चीज़ है और 'ज्ञानी' बगैर समझ में आ सके, वैसा नहीं है, परंतु उस निमित्त से मिलना हो पाए, वैसा हो ही नहीं पाता। इसलिए पूरा जगत् उलझा हुआ है।

ज्ञानी पुरुष यानी क्या? आपका दर्पण। आप जैसे हो वैसा ही रूप इस दर्पण में दिखाई देता है, वहाँ देर ही नहीं लगती न ज़रा भी। क्योंकि वे स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव, चारों तरह से स्व में रहते हैं। (ज्ञानी के) सिर्फ अँगूठे को छू लिया तब भी कल्याण हो जाएगा!

ज्ञानी पुरुष से मिलने के बाद वे स्वरमणता देते हैं। खुद का, स्व का शुरू होने के बाद में फिर रमणता चूक जाए तो वह कमज़ोरी कही जाएगी। खुद की रमणता शुरू हो जाने के बाद, स्वरमणता उत्पन्न हो जाने के बाद कमज़ोर पड़ जाए, उसे भूल कहेंगे।

ज्ञाता-द्रष्टा के तौर पर देखने से आता है निबेड़ा

ज्ञान के बाद हमारे अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, ऐसे गुणों द्वारा हमने अपने क्षेत्र को जाना। उससे हम क्षेत्रज्ञ बने।

अब, हमारे भीतर दो भाग है : एक होम डिपार्टमेन्ट और दूसरा फॉरेन डिपार्टमेन्ट। जो होम डिपार्टमेन्ट है, वह स्व-क्षेत्र है और पर-क्षेत्र में, 'मैं चंदू हूँ', वह पर-क्षेत्रता है। खुद के क्षेत्र में क्षेत्रज्ञ है। (खुद) क्षेत्रज्ञ और यह (चंदू) क्षेत्र है।

अब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ दोनों का भेदांकन हो गया। जो क्षेत्र है, वह फॉरेन डिपार्टमेन्ट है और स्व-क्षेत्र है, वह होम डिपार्टमेन्ट है। निरंतर होम डिपार्टमेन्ट में रहना है और फॉरेन में सुपरफ्लुअस रहना है।

हमारे द्वारा ज्ञान देने के बाद, होम और फॉरेन (स्व और पर) दोनों अलग हो गए। उसके बाद हम कहते हैं कि यदि आप अपना ज्ञाता-द्रष्टापन नहीं चूकोगे तो आप 'फॉरेन' के लिए बिल्कुल भी जोखिमदार नहीं हो।

प्रश्नकर्ता : ज्ञाता-द्रष्टा का *लक्ष* (जागृति) ठीक से नहीं बैठता। वह आता है और चला जाता है।

दादाश्री : चला जाएगा वह तो। वह जब निरंतर रहेगा न, तब भगवान बन चुके होंगे। अत: यदि यह चला जाता है, फिर भी वह पूर्ण तो ज़रूर होगा। क्योंकि अभी तो संसार में सभी कार्य बाकी हैं न! संसार की सभी फाइलें बाकी हैं या नहीं?

प्रश्नकर्ता : बाकी हैं अभी।

दादाश्री : वे फाइलें जैसे-जैसे कम होती जाएँगी, वैसे-वैसे यह *लक्ष* अधिक से अधिक बैठता जाएगा। फाइलों के कारण रुका हुआ है सारा।

प्रश्नकर्ता : खुद में अविरत रूप से रहा जा सके, ऐसी कृपा कीजिए। *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है) के हर एक संयोग को पर-परिणाम जानने में कमी रह जाती है।

दादाश्री : आपकी जो पहले की फाइलें हैं न, उन फाइलों का *निकाल* (निपटारा) कर देना। कोई कमी रह जाए, वहाँ पर समझ जाना कि यह फाइलों के कारण ही है। अविरत रूप से ज्ञाता-द्रष्टा पद में नहीं रह पाते हैं, उसका कारण यही है। एक तरह से पिछले हिसाब का दखल है फाइलों की, इसलिए अविरत रूप से नहीं रह पाते।

अक्रम अर्थात् ऐसा कहा जाएगा कि कारण मोक्ष हो गया। लेकिन ये जितने कर्म बाकी बचे हैं, उनका ज्ञाता-द्रष्टा पूर्वक निबेड़ा लाना है। ज्ञाता-द्रष्टा की तरह यह सब 'देखने' से निबेड़ा आएगा तो आत्यंतिक मोक्ष हो जाएगा। बस, और कुछ नहीं है। फिर चाहे कैसे भी कर्म हों, चाहे कितने ही गाढ़ हों, खराब हों लेकिन ज्ञाता-द्रष्टा रहने से छूट जाओगे।

ट्रैफिक चूका देता है 'देखना'

प्रश्नकर्ता : जो कुछ भी मेरा डिस्चार्ज आता है, उसे मैं सिर्फ 'देखता' रहता हूँ, और कुछ नहीं करता। क्या यह ठीक है?

दादाश्री : हाँ, ठीक है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान एक सरीखा क्यों नहीं रहता? उतर जाता है वापस, वापस चढ़ता है, ऐसा क्यों?

दादाश्री : नहीं उतरता। एक बार चढ़ने के बाद फिर नहीं उतरता। ज्ञान तो ज्ञान ही रहेगा। एक बार यदि अंधा हो जाए तो फिर दिखाई देना बंद हो जाता है लेकिन इसमें तो फिर से दिखाई देता है न?

'केवल निजस्वभावनुं, अखंड वर्ते ज्ञान,
कहीए कैवल्यज्ञान ते, देह छतां निर्वाण।'

– श्रीमद् राजचंद्र

'भले ही देह है लेकिन फिर भी निर्वाण है', ऐसा कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : दादाजी, अखंड होना बहुत कठिन है।

दादाश्री : अरे! जो खंड करके (टुकड़ों में) हो गया है, उसे अखंड होने में देर नहीं लगेगी। जो खंड हुआ है, उसे अखंड होने की झंझट नहीं करनी है। अखंड होने के लिए ही वैसा खंड (वाला) हुआ है।

प्रश्नकर्ता : दादा, इसमें ऐसा होता है कि कार्य शुरू करने से पहले इसका ध्यान रहता है। उसके बाद काम में मग्न हो जाते हैं तब तो भूल ही जाते हैं आधे घंटे तक। काम पूरा होने के बाद वापस प्रतीति आती है।

दादाश्री : ऐसा है न, यह कैसा है, वह आपको समझाता हूँ कि अपने यहाँ (बड़ौदा में) कोठी के ढलान पर जो चौराहा है, वहाँ एक बड़ी कुर्सी लगाकर सभी बैठे हुए हों, अब हमें सामने की ओर देखना है तब अगर बीच में बस आ जाए तो क्या हम देख पाएँगे? यानी कि जब तक बसें आती-जाती रहेंगी, तब तक सामने अखंड रूप से नहीं दिखाई देगा। अरे! बसों का आना-जाना बंद हो जाएगा। रात होते ही अपने आप बसें बंद हो जाएँगी, एकदम से।

प्रश्नकर्ता : दादाजी, यह बच्चों की किताब का उदाहरण सब को एकदम से कैसे दे दिया?

दादाश्री : हाँ, लेकिन क्या हो सकता है? काम आ जाता है न! उसे डर लगता है कि अब यह अखंड कब होगा! डर रखने जैसा नहीं है। ये सारी बसें बंद हो जाएँगी तब पूरा ही रहेगा, अखंड ही। तेरा ज्ञान तो अखंड ही है। इन बसों का अवरोध है और बसों का संयोग है। वे संयोग फिर वियोगी स्वभाव वाले हैं। वे तेज़ी से चले जाएँगे। अब तू नए संयोग खड़े मत करना।

प्रश्नकर्ता : दादा, यह सब समझने के लिए दस दिन तक बैठना पड़ता लेकिन आपने तो एक ही वाक्य में समझा दिया कि बीच में बसें ही दौड़ती हैं। इस पर से तो हमें अनुभव कर लेना चाहिए कि अब बेकार झंझट क्यों करें?

दादाश्री : अरे! यह आपका मोक्ष ही है। यह तो, यदि बसें आती-जाती रहें तो उसके लिए क्या हम बस वालों को मना कर सकते हैं? मोक्ष के हेतु से ऐसा नहीं बोलना चाहिए। दो मंज़िल वाली भी आ सकती हैं और एक मंज़िल वाली भी आ सकती हैं। फिर यदि हाथी जा रहा होगा तब भी दिखाई नहीं देगा। लेकिन अब वे संयोग हैं। अत: जितने हैं, उतने आकर चले जाएँगे और बाद में फिर वह अखंड ही रहेगा। है ही अखंड। वह अखंड नहीं रह पाता लेकिन कई लोगों को दादा (निदिध्यासन में) तो अखंड रहते हैं न!

तो यों समझ में आ जाएगा न, अखंड! देखो न, कितनी उलझन थी कि यह खंडित हो गया, अब अखंड कब होगा? तो अब किसकी मानता मानें? अखंड ही है यह। अब आपकी समझ में आ गया, अखंड? कठिन लगता था न, बहुत कठिन, 'ओहोहो! इसका कब अंत आएगा और कब वह होगा?' आ चुका है अंत! यहाँ उसके अभ्यास की ज़रूरत है। यह अक्रम विज्ञान है इसलिए टच में आने की ज़रूरत है। जो एक बार आकर मिलता है, उसकी यह जागृति जाती नहीं है। एक बार मुझसे मिले और ज्ञान ले ले तो उसकी जागृति नहीं जाती।

अब ज्ञाता-द्रष्टा रहना, वही चारित्र है लेकिन आपसे रहा नहीं जा सकेगा। क्योंकि आपकी तो हज़ारों बलाएँ हैं। बीच में बसें आती-जाती रहें तो उसमें ज्ञाता-द्रष्टा कैसे रह पाओगे? आप कहते हो कि 'इन बसों के कारण कुछ दिखाई नहीं देता'। बात सही है लेकिन बसों की वजह से नहीं दिखाई देता। तब यदि मैं पूछूँ कि, 'वे बसें आपके द्वारा बुलाई गई हैं या अन्य किसी के द्वारा?' तब कहते हैं, 'हाँ, वे तो मैंने ही बुलाई हैं।' मैंने पूछा, 'दो मंज़िल वाली भी बुलाई थीं?' तब कहते हैं 'हाँ, दो मंज़िल वाली भी बुलाई थीं।' आपने ही जमाई है यह बाज़ी। मेरी सभी बसें आनी बंद हो गई हैं और आपकी तो चल ही रही हैं न!

प्रश्नकर्ता : जब इन बसों का ट्रैफिक आता है तब दिखाई देना बंद हो जाता है, तो ऐसे में क्या देखें?

दादाश्री : ज्ञेय दिखाई देंगे। यह आत्मा दर्पण जैसा है। दर्पण की जगह पर यदि आत्मा को रखो तो दर्पण में जो है, वह वही चीज़ है, जो सामने थी। सामने जो सजाया हुआ खंभा था, क्या वह दर्पण में दिखाई देना बंद हो गया? खंभा अंदर झलकता रहता है। वह झलकना बंद हो जाए तब देखने वाला शोर मचाता है कि, 'मेरे आत्मा में अब कुछ दिखाई नहीं देता'। तब कहते हैं, भैया, बीच में ये बसें जा रही हैं, इसलिए।

आत्मा ज्ञाता-द्रष्टा है। वह इन आँखों की तरह नहीं देखता है, यों उसमें झलकता है। ज्ञाता-द्रष्टा रहने में क्या कोई क्रिया करनी पड़ती है? (प्रतिबिंब) जब झलकता है तब इस दर्पण को कोई मेहनत करनी पड़ती है? यहाँ से यों जाए तो अंदर दिखाई देता है।

अगर लोग पूछें कि क्या ये सब आात्मा ने किया है? नहीं। यह तो ऑन्ली साइन्टिफिक सरकमस्टैन्शियल एविडेन्स है। वह कैसे? जब आप दर्पण के सामने खड़े रहते हो तब आपकी इच्छा नहीं होने के बावजूद भी 'एक्ज़ेक्ट' (प्रतिबिंब) उत्पन्न हो जाता है न! आत्मा में चलने की शक्ति नहीं है, लेकिन पूर्वयोग से सिद्धक्षेत्र तक पहुँच जाता है, पूर्वयोग यानी 'डिस्चार्ज'।

दर्पण के सामने हाथ ऊपर-नीचे करो तो क्या प्रक्रिया होगी? वैसी ही प्रतिक्रिया होगी। और सारी प्रक्रिया बंद करनी हों तो क्या करना पड़ेगा? जगत् बंद करना हो तो हम अचल हो जाएँ तो वह भी अचल हो ही जाएगा। हम अचल ही हैं लेकिन हमारी नासमझी से हम में चंचलता उत्पन्न हो गई है।

स्पंदन क्यों होते हैं? 'चंचल' में 'खुद' तन्मयाकार होता है इसलिए। चंचल और तन्मयाकार होने वाला दोनों अलग हैं। तन्मयाकार होने वाला जो है, वह स्वभाव से अचल है और यह 'चंदूभाई' सचर है। 'आप' खुद मूल स्वरूप से अचल हैं और यह बीच में जो है वह आपका 'इगोइज़म' है।

जब उसे ऐसा भान होगा कि उसकी यह मान्यता गलत है और सही मान्यता प्रकट होगी तब वह अचल बन जाएगा। और यह सचल वापस अचल में मिल जाएगा, एक हो जाएगा।

जगत् का माना हुआ आत्मा, वह 'मशीनरी' (मिकेनिकल) आत्मा है, और फिर वह चंचल है। मूल आत्मा तो अचल है यदि इतना समझ लिया होता तब भी मोक्ष हो जाता!

- जय सच्चिदानंद

आत्मज्ञानी पूज्य दीपकभाई के सानिध्य में ओनलाइन सत्संग कार्यक्रम

3 से 6 जून - हिन्दी सत्संग शिविर

25 से 28 जून - नोर्थ अमरिका के महात्माओं के साथ सत्संग शिविर

त्रिमंदिरो के संपर्क : अडालज : 9328661166-77, **राजकोट :** 9924343478, **भूज :** 9924345588, **मुंबई :** 9323528901, **अंजार :** 9924346622, **मोरबी :** 9924341188, **सुरेन्द्रनगर :** 9737048322, **अमरेली :** 9924344460, **वडोदरा :** 9574001557, **गोधरा :** 9723707738, **जामनगर :** 9924343687. **अन्य सेन्टरों के संपर्क : अहमदाबाद (दादा दर्शन) :** (079) 27540408, **वडोदरा (दादा मंदिर) :** 9924343335, **दिल्ली :** 9810098564, **बैंगलूर :** 9590979099, **कोलकता :** 9830080820
यु.एस.ए.-केनेडा: +1 877-505-3232, **यु.के.:** +44 330-111-3232, **ऑस्ट्रेलिया:** +61 402179706

पूज्य नीरू माँ/ पूज्य दीपकभाई को देखिए टी.वी. चैनल पर

भारत

- **'दूरदर्शन गिरनार'** पर रोज सुबह 7-30 से 8-30, रात 9 से 10
- **'अरिहंत'** चैनल पर हर रोज सुबह 2-50 से 3-50, दोपहर 2-30 से 3, रात 8 से 9
- **'वालम'** पर हर रोज शाम 6 से 6-30 **(सिर्फ गुजरात राज्य में)**
- **'दूरदर्शन उत्तरप्रदेश'** पर हर रोज सुबह 7-30 से 8, रात 8-30 से 9-30 **(हिन्दी में)**
- **'साधना'** पर रोज सुबह 7-50 से 8-15 तथा रात 9-30 से 9-55 **(हिन्दी में)**
- **'उड़ीसा प्लस'** पर रोज सुबह 7-30 से 8 **(हिन्दी में-सिर्फ उड़ीसा राज्य में)**
- **'दूरदर्शन सह्याद्रि'** पर रोज सुबह 7 से 7-30 **(मराठी में)**
- **'आस्था कन्नड़ा'** पर रोज दोपहर 12-00 से 12-30 तथा शाम 4-30 से 5 **(कन्नड़ा में)**

USA - Canada

- **'TVAsia'**- पर हर रोज सुबह 7.30 से 8 EST
- **'Rishtey'** पर हर रोज सुबह 7 से 7.30 और 8 से 8.30 EST(हिन्दी में)

U K

- **'वीनस'** टी.वी. पर रोज सुबह 8 से 8-30 GMT (हिन्दी में)
- **'वीनस'** टी.वी. पर रोज सुबह 8-30 से 9 GMT
- **'MA TV'** पर रोज शाम 5-30 से 6-30 GMT
- **'Rishtey'** पर रोज सुबह 7 से 7-30 Western European Time (6 से 6-30 am GMT)

Australia

- **'Rishtey'** पर हर रोज सुबह 8 से 8-30 तथा दोपहर 1-30 से 2 (हिन्दी में)

Fiji-NZ-Singapore-SA-UAE

- **'Rishtey'** पर हर रोज सुबह 6 से 6-30 तथा 7-30 से 8 (हिन्दी में)

USA-UK-Africa-Australia

- **'आस्था ग्लोबल'** पर सोम से शुक्र रात 10 से 10-30
  (डिश टी.वी. चैनल **UK** -849, **USA** -719) (गुजराती और हिन्दी में)

मई 2021
वर्ष-16 अंक-7
अखंड क्रमांक - 187

दादावाणी

Date Of Publication On 15th Of Every Month
RNI No. GUJHIN/2005/17258
Reg. No. G-GNR-348/2021-2023
Valid up to 31-12-2023
LPWP Licence No. PMG/NG/036/2021-2023
Valid up to 31-12-2023
Posted at Adalaj Post Office
on 15th of every month.

दर्पण की तरह खुद के स्वभाव से ही है सबकुछ प्रकाशमान

इस दर्पण को यदि खुद को यह सारा जगत् दिखाई देता, दर्पण खुद देखने वाला होता तब तो उसे कितनी परेशानी हो जाती? उसी प्रकार यह चैतन्य खुद देखने वाला है। जब से वह जानने लगता है कि, 'ये सभी चीज़ें मेरे स्वभाव के कारण (मुझमें) प्रकाशमान होती हैं और चीज़ें तो बाहर ही हैं', तभी से वह खुद का सुख चखने लगता है और परेशानियाँ छूट जाती हैं! उसके बाद आत्मा का सुख नहीं जाता। आत्मा के बारे में 'ऐसा' समझाना, वह बहुत बड़ी चीज़ है और 'ज्ञानी' बगैर समझ में आ सके, वैसा नहीं है, परंतु उस निमित्त से मिलना हो पाए, वैसा हो ही नहीं पाता। इसलिए पूरा जगत् उलझा हुआ है।

- दादाश्री

Printed and Published by Dimple Mehta on behalf of Mahavideh Foundation - Owner. Printed at Amba Offset, B - 99, GIDC, Sector - 25, Gandhinagar - 382025.